ज्योतिर्मठ की शङ्कराचार्य पीठ

इलाहाबाद उच्च न्यायालय का फैसला

विसंगतियां और अन्तर्विरोध

विमर्श



अजित वर्मा
प्रधान सम्पादक,
दैनिक जयलोक, जबलपुर

इलाहाबाद उच्च न्यायालय का फैसला :

विसंगतियां और अन्तर्विरोध

* इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने शांकर मठों के लिए शंकराचार्य के चयन, शंकराचार्य की योग्यताओं, अयोग्य के निग्रह और शांकर पीठों के प्रबन्धन के लिए आद्य शंकराचार्य द्वारा रचित विधान 'मठाम्नाय-महानुशासनम्' को 'कानून' माना है, जो कि वह है। लेकिन स्वामी शान्तानन्द (अब दिवंगत) के मामले में स्वयं उसने इस कानून का उल्लंघन क्यों किया ?
* स्वामी शान्तानन्द की योग्यता के निर्धारण में वसीयत को वरीयता मठाम्नाय महानुशासनम् के कानून का उल्लंघन क्यों किया गया ?
* यह प्रश्न उपस्थित हो गया है कि क्या वसीयत कानून से ऊपर मानी जा सकती है ?
* स्वामी शान्तानन्द का निग्रह किये जाने के अनेकों प्रमाणों की अनदेखी क्यों की गई है और निग्रहीत स्वामी शान्तानन्द को पीठासीन क्यों माना गया ?
* स्वामी शान्तानन्द के आवेदन पर निश्चित स्थान और निश्चित समयावधि के लिए जारी व्यक्ति लक्षित स्थगन को सर्वलक्षित क्यों मान लिया गया ?
* स्वामी ब्रह्मानन्द की कथित वसीयत में विद्यमान विसंगतियों और उसके स्पष्ट उल्लंघन की अनदेखी कर उसे वैध कैसे मान लिया गया ?
* स्वामी शान्तानन्द से लेकर स्वामी विष्णुदेवानन्द और स्वामी वासुदेवानन्द तक गुरु-शिष्य परम्परा के नियम के विपरीत होने के बावजूद उसे नियमानुकूल कैसे मान लिया गया ?
* स्वामी शान्तानन्द और स्वामी वासुदेवानन्द द्वारा की गई विदेश यात्राओं के कारण सन्यास के नियमों को स्वयं समझने के बावजूद उनके दण्ड को अशुद्ध और सन्यास को बाधित क्यों नहीं माना गया ? सन्यास भंग हो जाने से उन्हें सन्यासच्युत हो जाने के बावजूद शंकराचार्य पद के लिए योग्य कैसे माना गया ?
* कुछ बिन्दुओं पर निर्णय में चुप्पी क्यों साधी गयी, उदाहरणार्थ-स्वामी विष्णुदेवानन्द की कथित वसीयत में उनके हस्ताक्षर कूटरचित होना और स्वामी वासुदेवानन्द का कुष्ट रोगी होना।
* जब स्वामी वासुदेवानन्द के मामले में 'अयोग्यता' को 'वसीयत' के ऊपर वरीयता दी गई तो 'अयोग्य' शान्तानन्द के मामले में 'वसीयत को वरीयता' क्यों दी गई ?

ज्योतिष्पीठ शङ्कराचार्य प्रसंग

2.4

इलाहाबाद उच्चन्यायालय के निर्णय से उत्पन्न स्थितियां

विमर्श

लेखक: अजित वर्मा

अजित वर्मा



पत्रकारिता के 50 वर्ष

स्वर्ण जयंती ग्रंथमाला (2)

ज्योतिष्पीठ शंकराचार्य:
इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय

* विमर्श

* संयोजन सहयोग	:	जय लोक
* लेखक	:	अजित वर्मा
* संकलन सहयोग	:	सच्चिदानंद शेकटकर परितोष वर्मा
* कापीराइट	©	परितोष वर्मा
* प्रकाशन तिथि	:	दीपावली, ई.स. 2017
* प्रकाशक	:	जयलोक प्रकाशन
* मुद्रक	:	राजश्री ऑफसेट
* मूल्य	:	रु.100/- मात्र

निवेदन

...ताकि परम्परा विच्छिन्न न हो
और शून्य निर्मित न हो

भारत में सनातन- वैदिक धर्म की सर्वाधिक सुदृढ़ शांकर परम्परा पर निरन्तर इतने आघात होते रहते हैं कि अब किसी भी ओर से होने वाले प्रहार हिन्दुओं को आश्चर्य-चकित नहीं करते।

श्रीमदाद्य शंकराचार्य भगवत्पाद शंकर द्वारा ढाई हजार वर्ष पूर्व स्थापित चारों शांकर पीठें और उन पीठों पर अधिष्ठित होते आ रहे शंकराचार्य आज भी शांकर परम्परा के सुदृढ़ स्तम्भ हैं। लेकिन ठगों की भीड़ इस परम्परा को घुन की तरह चाट जाने पर आमादा है।

22 सितम्बर 2017 को ज्योतिष्पीठ के सम्बंध में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिये गये फैसले ने शांकर परम्परा के विषय में विचार-विमर्श का नया आधार उपलब्ध करा दिया है। फर्जी शंकराचार्यों और कथित वसीयतों के बहाने शंकराचार्य पद पर दावा ठोकने वालों के विषय में विचार-विमर्श का अवसर हिन्दुओं के हाथ आया है। और, अब जरूरी है कि एक बार अंतिम रूप से प्रयास करके अंधियारे को चीरकर सत्य के सूर्य की प्रतिष्ठा कर दी जाए।

लेकिन, फिलहाल बड़ी बात है इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय को पढ़ने पर सामने आयी विसंगतियां और अन्तर्विरोध। मैंने इन्हीं को केन्द्रित कर विचार-विमर्श को आगे बढ़ाने का प्रयत्न इस पुस्तक 'विमर्श' में किया है। मेरा यह लेखन कानून की दृष्टि से या कानून पर आधारित तकनीकी लेखन नहीं है, वह तो विधिवेत्ता करेंगे। लेकिन मेरा यह लेखन इस बात पर आधारित है कि इस फैसले से लाखों हिन्दू दिग्भ्रमित और स्तब्ध हैं, यह सोचकर कि अब ज्योतिष्पीठ का क्या होगा ? क्योंकि न्यायालय ने ऐसा शून्य निर्मित कर दिया है जहां सवालों के चक्रवात उभर रहे हैं। इन सवालों के जवाब मिलना जरूरी है।

(अजित वर्मा)

अनुक्रमणिका

ज्योतिष्पीठ की शंकराचार्य पीठ पर इलाहाबाद हाईकोर्ट का फैसला

स्वामी वासुदेवानन्द आयोग्य ठहरा दिये गए हैं तो, यह अयोग्यता किस तिथि से लागू होगी ?

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने पिछले दिनों ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में स्वामी वासुदेवानन्द को स्थायी रूप से निषिद्ध करते हुए उन्हें न केवल शंकराचार्य बल्कि, सन्यासी होने तक के लिए अयोग्य घोषित कर दिया है। इस आदेश में निषेध की स्पष्ट तिथि न देते हुए केवल अब नाऊ (now) लिखा गया है। इसलिए यह स्वाल उठ रहा है कि स्वामी वासुदेवानन्द की यह अयोग्यता किस तिथि से प्रभावी मानी जाना चाहिए ? जिस दिन फैसला सुनाया गया, उस तिथि से या जिस दिन अर्थात् 15 नवम्बर 1989 ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में उन्होंने स्वयं को विराजमान घोषित किया उस तिथि से ?

सवाल चूंकि स्वामी वासुदेवानन्द के 'अयोग्य' घोषित किये जाने का है, इसलिए यह बात महत्वपूर्ण है कि यह अयोग्यता किस दिन से लागू मानी जायेगी ? जब इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उन्हें सन्यास तक के योग्य ही नहीं माना तब स्पष्ट है कि 15 नवम्बर 1989 को जब स्वामी वासुदेवानन्द ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में कुछ लोगों द्वारा

प्रतिष्ठित किये गये उस दिन भी तो वे अयोग्य ही थे। तो, ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य की गद्दी इस आधार पर उसी दिन से खाली मानी जाना चाहिए अर्थात् 15 नवम्बर 1989 से। यहां सवाल उठता है कि जो सन्यासी तक न हो ऐसे अयोग्य व्यक्ति द्वारा एक के बाद एक अदालतों द्वारा निषिद्ध किये जाने के बावजूद 28 साल तक शंकराचार्य पद के दुरुपयोग को भी अपराध माना जाएगा या नहीं जबकि स्वयं उच्च न्यायालय द्वारा शंकराचार्य की गद्दी पर स्वामी वासुदेवानन्द के प्रतिष्ठित होने को ठगी और फर्जीबाड़ा कहा गया है ?

स्पष्ट है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने जब स्वामी वासुदेवानन्द को सन्यासी होने तक के योग्य भी नहीं माना- जब वे सन्यासी ही नहीं हो सकते तो फिर, शंकराचार्य कैसे बन सकते हैं? इसलिए विशेष रूप से न्यायालय द्वारा स्वामी वासुदेवानन्द को न केवल शंकराचार्य पद बल्कि सन्यासी होने तक के लिए अयोग्य करार दिये जाने से ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य की गद्दी के खाली होने की तारीख महत्वपूर्ण हो गई है।

अयोग्यता की तिथि का निर्धारण हर दृष्टि से जरूरी है। यह स्पष्टीकरण होना ही चाहिए। परन्तु स्पष्टीकरण कौन देगा ? यह सवाल अपनी जगह है। लेकिन स्थिति जितनी जल्दी स्पष्ट हो सके उतना ही भ्रम कम फैलेगा।

अमल किया जाए तो फर्जी शंकराचार्यों पर कहर बनकर टूट सकता है यह फैसला

ज्योतिष्पीठ (ज्योतिर्मठ) के शंकराचार्य के सम्बंध में इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा दिया गया यह फैसला सनातनधर्म में फैल रही अराजकता पर अंकुश लगाने की दिशा में एक मील का पत्थर भी साबित हो सकता है, बशर्ते केन्द्र और उ.प्र.की सरकार उस पर वैसी ही गम्भीरता से अमल करें, जैसी गम्भीरता से न्यायालय ने उन्हें आदेश दिया है।

न्यायालय का स्पष्ट फैसला है कि आद्य शंकराचार्य द्वारा स्थापित चार पीठों पर आसीन शंकराचार्य ही मान्य हैं और वैधानिक हैं। केवल यही चारों पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में कार्य कर सकते हैं। इनके अलावा अन्य किसी को अपने नाम के आगे 'जगद्गुरु शंकराचार्य' लिखने या स्वयं को शंकराचार्य घोषित करने का अधिकार नहीं है। जो ऐसा करते हैं वे ठगी के अपराधी हैं और केन्द्र और राज्य सरकारों को ऐसे फर्जी शंकराचार्यों की सूची बनाकर उनके विरुद्ध निषेधात्मक और दण्डात्मक कार्यवाही कर उन्हें जेल भेजना चाहिए।

हम कहना चाहेंगे कि इलाहाबाद हाईकोर्ट का क्षेत्राधिकार चूंकि उत्तरप्रदेश तक सीमित है, इसलिए यह अभी केन्द्र के साथ उत्तरप्रदेश में ही प्रभावी होगा। इस दृष्टि से अच्छा होता कि ऐसा फैसला सुप्रीम कोर्ट से आया होता ताकि यह पूरे देश पर बन्धनकारी होता। वैसे उच्च न्यायालय ने चूंकि केन्द्र को भी यह निर्देश दिया है और अपने आदेश की प्रतिलिपि स्वयं ही केन्द्र सरकार और उत्तरप्रदेश सरकार को भेजी है इसलिए केन्द्र

सरकार चाहे, तो आदेश पर अमल करते हुए अब भी वह इसे पूरे देश में लागू कर सकती है।

दरअसल, न्यायालय का आदेश स्पष्ट है और इसका व्यापक प्रभाव हो सकता है। क्योंकि पिछले 60 सालों में विशेषत: 1980 के बाद देश में फर्जी और स्वयंभू शंकराचार्यों की बाढ़ आ गई है। इनमें से कुछ फर्जी शंकराचार्य तो शांकर परम्परा को धूमिल कर मान्य शंकराचार्यों का प्रभाव घटाने के लिए जानबूझकर कुछ लोगों द्वारा षड़यंत्रपूर्वक तैनात किए गए हैं। देश में ऐसे फर्जी शंकराचार्यों की संख्या इस समय 75 से ज्यादा है।

हमारा मानना है कि इलाहाबाद उच्चन्यायालय का फैसला यदि ईमानदारी से लागू हो पाया तो इन फर्जी शंकराचार्य नामधारी ठगों का प्रभावी निषेध हो सकेगा।

मूलत: यह फैसला उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठ (ज्योतिर्मठ–बदरिकाश्रम, हिमालय) के शंकराचार्य के प्रश्न पर चल रहे मुकदमे में आया है, जिसमें स्वयं को शंकराचार्य कहने वाले स्वामी वासुदेवानन्द को न्यायालय ने शंकराचार्य मानने से सिरे से इनकार कर दिया है और उन्हें शंकराचार्य के रूप में कार्य करने से न केवल स्थायी रूप से रोक दिया है, बल्कि, न्यायालय ने स्वामी वासुदेवानन्द को तो सन्यासी होने तक के लिए अयोग्य करार दे दिया है। इससे ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य का विवाद कुछ हद तक हल हो गया है।

स्वामी शान्तानन्द के मामले में यह निर्णय अन्तर्विरोध से भरा है

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती के अभिषेक को वैध न बताते हुए ज्योतिष्पीठ को रिक्त घोषित करते हुए तीन माह की अवधि में नया शंकराचार्य चुनने का आदेश दिया है। न्यायालय ने शेष तीनों पीठों के शंकराचार्यों, भारत धर्म महामण्डल और काशी विद्वत् परिषद को ज्योतिष्पीठ का नया शंकराचार्य चुनने के लिए कहा है। लेकिन न्यायालय ने श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज को द्वारका पीठ का शंकराचार्य माना है। अब यह देखने की प्रतीक्षा की जा रही है कि सभी सम्बंधित जन इस मामले में कब और क्या अग्रिम कार्यवाही करते हैं।

यों, इस फैसले से शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी की यह मुहिम कामयाब हुई है कि ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में कोई अपात्र दावा न करे और देश में फर्जी शंकराचार्यों का प्रभावी निग्रह किया जाए। लिहाजा, यह इन अर्थों में फैसला उनके अभियान की जीत है। और, इससे स्वामी स्वरूपानन्द जी का एक महत्वपूर्ण अभीष्ट पूरा हुआ है। लेकिन यह निर्णय स्वामी शांतानंद के मामले में इतनी विसंगतियों और त्रुटियों से भरपूर है कि उसे चुनौती दिया जाना सम्भाव्य है।

हमारा मानना है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती जी महाराज की जगह नये शंकराचार्य की नियुक्ति की जो व्यवस्था दी है, वह भी अन्तर्विरोध से ग्रस्त होने के कारण चुनौती दिये जाने के

योग्य है, क्योंकि न्यायालय ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि उसने नये शंकराचार्य के चयन के लिए जो तंत्र और प्रणाली निर्धारित की है वह आदिशंकराचार्य द्वारा लिखित शांकर पीठों के संविधान मठाम्नाय महानुशासनम् जिसे स्वयं उच्च न्यायालय ने 'कानून' माना है कि प्रावधानों के विरुद्ध है। उच्च न्यायालय ने इस ऐतिहासिक सत्य की अनदेखी कर दी है कि अपने आदेश में उसने स्वयं नये अब शंकराचार्य की नियुक्ति की जो प्रणाली निर्धारित की है उसी प्रणाणी से ही तो स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती जी का चयन और अभिषेक 1973 में किया गया था। और, इस बात की अनदेखी कर दी गई है कि ठीक इसी पद्धति से सन् 1941 (चैत्र शुक्ल चतुर्थी संवत् 1998) को स्वामी ब्रह्मानन्द जी का भी चयन और अभिषेक हुआ था।

न्यायालय ने कहा है कि जिस समय ज्योतिष्पीठ पर स्वामी स्वरूपानन्द जी का अभिषेक हुआ,उस समय ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य की गद्दी खाली नहीं थी क्योंकि उस पर स्वामी शांतानन्द जी आसीन थे और उनके पक्ष में न्यायालय का स्थगनादेश था।

हमारा मानना है कि जहां तक स्वामी शान्तानन्द के पक्ष में स्थगन जारी रहते स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के चयन और अभिषेक का प्रश्न है, वह इसलिए वैध था क्योंकि शांतानन्द जी के पक्ष में दिया गया स्थगन सर्वलक्षित न होकर केवल करपात्री जी, कृष्णबोधाश्रम जी और एक अन्य के विरुद्ध व्यक्ति लक्षित स्थगन आदेश था और वह भी केवल एक माह चलने वाले प्रयाग के माघ मेले के लिए था तथा स्पष्ट रूप से वह

स्वामी स्वरूपानन्द जी के लिए तो लक्षित ही नहीं था। वैसे भी, स्वामी स्वरूपानन्द जी का चयन और अभिषेक इसलिए भी वैध था क्योंकि वह मात्र कृष्ण बोधाश्रम जी के उत्तराधिकारी के रूप में नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूप से मठाम्नाय -महानुशासनम् के प्रावधानों के अंतर्गत उसी पद्धति से हुआ था, जिससे ब्रह्मानन्द जी का हुआ था और चूंकि स्वामी शांतानन्द जी को अपात्र मानकर मठाम्नाय के प्रावधान के अनुसार मनीषियों ने उनका निग्रह उनके द्वारा एक विवादित वसीयत के आधार पर स्वयं को शंकराचार्य बनाये जाने का दावा किये जाने के समय ही कर दिया था, इसीलिए ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य की गद्दी उनके द्वारा एक विवादित वसीयत के आधार पर स्वयं को शंकराचार्य बनाये जाने का दावा किये जाने के बावजूद रिक्त ही थी।

शंकराचार्य के रूप में स्वामी शांतानंद का निग्रह मठाम्नाय महानुशासनम् के आधार पर निर्णायक था

स्पष्ट है कि मठाम्नाय-महानुशासनम् के निर्देश के अन्तर्गत स्वामी स्वरूपानन्द जी के ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में अभिषेक के समय स्वामी शांतानन्द धर्म क्षेत्र में मान्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य नहीं थे। क्योंकि मनीषीगण ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में उनके नाम का विरोध करके उनका निग्रह कर चुके थे और 21 मई 1953 को ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी ब्रह्मानन्द जी के निधन के पश्चात उनके उत्तराधिकारी के रूप में चूंकि 25 जून 1953 स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी का चयन करके मनीषियों ने उनका अभिषेक

किया और 1973 में उनके ब्रह्मलीन होने पर मठाम्नाय महानुशासनम के प्रावधान के अन्तर्गत ही मनीषियों ने स्वामी स्वरूपानन्द जी को ही मान्य शंकराचार्य घोषित किया था।

अतएव स्वामी स्वरूपानन्द जी का चयन और अभिषेक वैध था। यहां उल्लेखनीय है कि काशी विद्वत् परिषद ने 9.9.1973 और 12.9.1973 को अपने प्रस्तावों के द्वारा और द्वारका के शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी ने अपने पत्र दिनांक 7.12.1973 द्वारा, गोवर्धनपीठाधीश्वर (पुरी) के शंकराचार्य निरंजन देवतीर्थ तथा श्रृंगेरी के शंकराचार्य अभिनव विद्यातीर्थ जी ने भी अपने पत्रों द्वारा स्वामी स्वरूपानन्द जी की योग्यताओं का समर्थन करते हुए उन्हें ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य मान्य किया था। जब 7 दिसम्बर 1973 को स्वामी स्वरूपानन्द जी का अभिषेक हुआ, तब दो शंकराचार्य स्वयं उपस्थित हुए और श्रृंगेरी के शंकराचार्य ने अपना प्रतिनिधि भेजा।

इन तथ्यों के आधार पर हमारा मानना है कि स्वामी शान्तानन्द के मामले में तो उच्च न्यायालय के निर्णय में अन्तर्विरोध है ही, उसका सम्भ्रम भी सामने आता है। यहां इन अन्तर्विरोधों के समझने की कोशिश करना उचित होगा।

* पहले स्वामी शान्तानन्द को गद्दीनशीन माने जाने विषयक निष्कर्ष को देखें। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने स्वामी शान्तानन्द को इस आधार पर गद्दीनशीन माना है कि 'उनकी अयोग्यता के आधार पर उनका निग्रह

विधिवत नहीं किया गया।' न्यायालय के इस निष्कर्ष में न केवल गम्भीर वैधानिक चूक है, बल्कि अन्तर्विरोध भी है।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि उच्च न्यायालय ने निग्रह का अर्थ 'हटाये जाने' से लिया है, जबकि निग्रह एक प्रक्रिया है जिसका अर्थ अस्वीकार किया जाना, अमान्य किया जाना, रोकना, विरोध करना और वंचित रखना भी है।

* केवल यही नहीं है कि वसीयत में (स्वामी शान्तानन्द) का नाम सामने आते ही विद्वानों ने उन्हें अपात्र और अमान्य घोषित कर दिया था और अन्य तीनों पीठों के शंकराचार्यों, भारत धर्म महामण्डल और काशी के विद्वानों ने उन्हें अपात्र मानते हुए उनका बहिष्कार कर दिया था बल्कि 11.06.1953 को, यानी जब दूसरे दिन हठपूर्वक 12.06.1953 को स्वामी शान्तानन्द का कथित अभिषेक किये जाने की बात कही जा रही थी, उससे एक दिन पहले ही बनवारी लाल दीक्षित ने एक आवेदन प्रस्तुत कर स्वामी शान्तानन्द का अभिषेक रोकने का आग्रह इस आधार पर किया था पण्डित विद्वान मण्डल (काशी विद्वत् परिषद) और अन्य धार्मिक संस्थाएं, यहां तक कि अंतरिम समिति के अध्यक्ष स्वामी स्वरूपानन्द (स्वामी ब्रह्मानन्द जी के वरिष्ठतम शिष्य) स्वामी शान्तानन्द को ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य बनाये जाने का विरोध उनके अयोग्य और अपात्र होने के कारण कर रहे हैं। (विरोध करने वालों में स्वामी करपात्री जी और ब्रह्मलीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी ब्रह्मानन्द जी के 40 में से 39 शिष्य शामिल थे)।

यह विरोध स्वामी शान्तानन्द की अपात्रता और अनर्हता के कारण ही था। तो, विचारणीय तथ्य यह है कि स्वामी शान्तानन्द का 'निग्रह' करने के लिए मनीषीगण उनका बहिष्कार करने, विरोध करने, उन्हें अमान्य घोषित करने, अस्वीकृत करने और उनके अभिषेक को रोकने के लिए कोर्ट में आवेदन देने के सिवाय और क्या कर सकते थे? और कौन सा कदम उठा सकते थे? क्या वे फौजदारी करते?

यद्यपि समय की संकीर्णता के कारण कोर्ट में प्रस्तुत उनके आवेदन पर सिर्फ यही हुआ था कि इस प्रकरण में विवाद को सिविल कोर्ट द्वारा निपटारे के योग्य करार देते हुए स्वामी शान्तानन्द के अभिषेक पर इस आधार पर रोक लगाने से पीठासीन अधिकारी ने इनकार कर दिया था कि 'अब तक तो अभिषेक हो भी चुका होगा।'

इसी क्रम में बाल ब्रह्मचारी महेश जी और स्वामी विश्वदेवानन्द सरस्वती ने स्वामी करपात्री जी, स्वामी कृष्णबोधाश्रम और कुछ अन्य के विरुद्ध मुंसिफ कोर्ट (नार्थ) लखनऊ के सम्मुख वाद क्र. 374/1953 पेश कर स्वामी कृष्णबोधाश्रम को शंकराचार्य के रूप में कार्य करने से रोकने की मांग की। जबकि स्वामी कृष्ण बोधाश्रम को 25.06.1953 को ही ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य चुनकर मनीषीगण उनका अभिषेक कर चुके थे। 11.06.1953 को ही मजिस्ट्रेट कोर्ट में वैधानिक रूप से मनीषियों द्वारा स्वामी शान्तानन्द का निग्रह किये जाने का औपचारिक वक्तव्य वैधानिक रूप से प्रस्तुत किया जा चुका था। अर्थात् उनका निग्रह करके ज्योतिष्पीठ की शंकराचार्य गद्दी मठाम्नाय महानुशासनम् के प्रावधान के अनुरूप मनीषियों ने रिक्त घोषित कर दी थी।

यहां विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आगे चलकर वाराणसी के एडीजी कोर्ट ने स्वामी शान्तानन्द को 'शंकराचार्य पद के लिए अयोग्य और अनर्ह' ही ठहरा दिया।

इन स्थितियों में यह बात साफ तौर पर सामने आना चाहिए कि इन सारी घटनाओं के बावजूद इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य पद के लिए स्वामी शांतानन्द का निग्रह किये जाने के तथ्य को 'वैध' क्यों नहीं माना?

मठाम्नाय -महानुशासनम् को कानून माना तो, अयोग्य स्वामी शांतानंद को शंकराचार्य कैसे मान लिया?

जहां तक स्वामी शान्तानन्द को शंकराचार्य के पद पर गद्दीनशीन मानने की बात है, इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने अपने विस्तृत निर्णय के पैरा 340 पेज 267 में स्वयं लिखा है कि उपरोक्त पुस्तकों (मठाम्नाय-महानुशासनम्) में दिये गये निर्देश स्थापित परम्परा होने के कारण कानून की शक्ति रखते हैं। और ज्योतिर्मठ/ज्योतिष्पीठ पर लागू होते हैं।.... इसी निर्णय में पैरा 342 पृष्ठ 270 पर लिखा गया है कि शंकराचार्य के चयन, नियुक्ति और शंकराचार्य के निग्रह को नियंत्रित करने के विषय में इसी कानून के निर्देशों की संतुष्टि होनी चाहिए।... कानून होने के कारण उसका पालन किया जाना आवश्यक है। उसका उल्लंघन करके किया जाने वाला कोई भी कार्य अवैध है।... शंकराचार्य के रूप में किसी के अभिषेक के लिए जरूरी है कि वह दण्डी सन्यासी हो, संस्कृत का ज्ञाता हो और वेदं, पुराण आदि का पूर्ण ज्ञान रखता हो।

यहां यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि शंकराचार्य पद के लिए मठाम्नाय-महानुशासनम् के अनुसार सन्यासी का बाल ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय होना अनिवार्य है। मठाम्नाय महानुशासनम् में आद्य शंकराचार्य का यह भी निर्देश है कि इन लक्षणों से हीन कोई व्यक्ति मेरी पीठ पर बैठ भी गया हो तो मनीषियों को उसका निग्रह कर देना चाहिए।

हमारा मानना है कि निग्रह की प्रक्रिया का मनमाना इण्टरप्रेटेशन नहीं किया जा सकता। जैसा कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने किया है (पृष्ठ 535)।

उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में अगर मठाम्नाय महानुशासनम् में दिये गए निर्देशों को शंकराचार्य पद के लिए चयन, उसकी नियुक्ति और उसे हटाये जाने तथा शंकराचार्य द्वारा मठ के प्रबंधन किये जाने के मामलों में कानून माना है और शंकराचार्य पद के लिए मठाम्नाय महानुशासनम् में निर्देशित अर्हताओं और योग्यताओं का होना अनिवार्य माना है तो पूर्व में ही मनीषियों द्वारा निग्रह किये जाने और एडीशनल डिस्ट्रिक्ट जज द्वारा 'अयोग्य होने के कारण शंकराचार्य पद से हटाये जाने के लिए योग्य' ठहराये जा चुके स्वामी शान्तानन्द की शंकराचार्य पद पर नियुक्ति को वह वैध कैसे ठहरा सकता है ?

अदालत जिन स्वामी शान्तानन्द को अयोग्य और शंकराचार्य पद से हटाये जाने योग्य करार दे चुकी थी, उनके योग्य और सुपात्र न होने के सवाल पर उच्च न्यायालय, जिसने स्वयं अपने विस्तृत निर्णय में मठाम्नाय-महानुशासनम् का अत्यंत गम्भीरता से विवेचन किया है, इतना मात्र कहकर पल्ला नहीं झाड़ सकता कि जब शंकराचार्य स्वामी ब्रह्मानन्द

जी ने अपनी वसीयत में शंकराचार्य पद के लिए गुरु-शिष्य परम्परा के अनुकूल स्वामी शान्तानन्द को नामित किया तो उन्हें योग्य मानकर ही किया होगा। अगर 'विल' कर्ता के विवेक के आधार पर ही योग्यता का निर्धारण छोड़ दिया जाये तो फिर यह मठाम्नाय महानुशासनम्, जिसे स्वयं उच्च न्यायालय ने कानून माना है में निदिष्ट योग्यता सम्बंधी निर्देशों की उपेक्षा ही नहीं, उनका उल्लंघन ही हो जायेगा।

यहां यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि कानून (मठाम्नाय - महानुशासनम्) का प्रभाव अधिक है या एक चुनौती दिये जाने योग्य इच्छा -पत्र का? क्या 'विल' कानून को सुपरसीड कर सकती है? क्या यह विधि प्रश्न नहीं है? ऐसे प्रश्न की अनदेखी करके उच्च न्यायालय ने स्वामी शान्तानन्द को केवल विल के आधार पर शंकराचार्य पद के लिए सुपात्र कैसे मान लिया?

यहां एक बार फिर 'निग्रह' का प्रश्न उठता है। उच्च न्यायालय ने इसके लिए 'औपचारिक वैधानिक' घोषणा को अनिवार्य बताया है। हमने पूर्व में बताया है कि कैसे मनीषियों ने मठाम्नाय के निर्देशों का पालन करते हुए 'विल' में स्वामी शान्तानन्द का नाम सामने आते ही उसे अमान्य करार देते हुए कोर्ट में उनका विरोध करते हुए उनका अभिषेक रोकने की अर्जी दाखिल की। फिर उनको अयोग्य ठहराते हुए मुकदमा दायर किया। अदालत ने भी उन्हें अपात्र ठहराते हुए उन्हें हटाये जाने योग्य बता दिया। उच्च न्यायालय को यह स्पष्ट करना चाहिए था कि इसे उसने इतने सारे प्रमाणों के रहते मनीषियों द्वारा स्वामी शान्तानन्द का 'निग्रह' वैध और औपचारिक क्यों नहीं माना? क्या यह फैसले में विद्यमान एक जबर्दस्त विसंगति और अन्तर्विरोध नहीं है?

वसीयत में अयोग्य और अपात्र व्यक्ति को नामित किया जाना कैसे वैध होगा?

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ब्रह्मलीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी ब्रह्मानन्द की वसीयत और उसमें गुरु -शिष्य परम्परा के नाम पर स्वामी शान्तानन्द को उत्तराधिकारी नामित किये जाने को वैध माना है। यही नहीं, स्वामी शान्तानन्द के अभिषेक को भी वैध ठहराया है। इससे बहुत से प्रश्न उपस्थित होते हैं।

जहां तक वसीयत (इच्छा पत्र) में स्वामी शांतानन्द को नामित किये जाने की बात है यह प्रश्न उपस्थित होता है कि उन्हें नामित करने के साथ उनकी योग्यता और पात्रता का उल्लेख वसीयत में क्यों नहीं किया गया? यह क्यों स्पष्ट नहीं किया गया कि क्या वे मठाम्नाय महानुशासनम् में आद्य शंकराचार्य के लिए निर्दिष्ट योग्यताओं से सम्पन्न हैं या नहीं? जबकि मठाम्नाय-महानुशासनम् जिसे उच्च न्यायालय ने स्वयं कानून माना है उसमें किसी को शंकराचार्य बनाने के लिए निर्दिष्ट लक्षण और योग्यताएं मेण्डेटरी हैं। अगर वसीयत में किया गया नामांकन मठाम्नाय-महानुशासनम् के निर्देशों के अनुकूल नहीं है तो वह वैध कैसे माना जा सकता है?

वैसे एक बड़ा सच यह भी है कि वसीयत में स्वामी शान्तानन्द के बाद क्रमिक रूप से नामित अन्य तीन व्यक्ति भी शंकराचार्य पद के लिए योग्य नहीं थे, क्योंकि सभी वे गृहस्थ थे। उनमें अन्य अयोग्यताएं भी थीं। स्वयं स्वामी शांतानन्द गृहस्थ थे। गीताप्रेस में बुक बाइण्डर की नौकरी कर चुके थे। संस्कृत का ज्ञान ही उन्हें नहीं

था, तो वे वेद-वेदांग विषारद कैसे हो सकते थे? कैसे शंकराचार्यपद के योग्य माने जा सकते थे?

निर्णय में स्वामी शांतानन्द द्वारा स्वामी विष्णुदेवानन्द और स्वामी वासुदेवानन्द को उत्तराधिकारी बनाये जाने को भी सही बताया गया है- (पृष्ठ 648)। लेकिन यह निर्धारण करते समय वसीयत के ही इस प्रावधान की उपेक्षा कर दी गयी है कि वरिष्ठ क्रम पर अंकित नामित व्यक्ति के जीवित रहते कनिष्ठ क्रम पर नामित को शंकराचार्य नहीं बनाया जा सकेगा।

हमारा मानना है कि धार्मिक मामलों में धार्मिक कानूनों को ही सर्वोपरि माना जाना चाहिए। शांकर परम्परा के विषय में मठाम्नाय - महानुशासनम् ही कानून है। तब उसके शब्दों के साथ उनमें निहित भावनाओं को भी सर्वोपरि माना जाना चाहिए।

मठाम्नाय में शंकराचार्य पीठ के लिए जिन लक्षणों को अनिवार्य माना गया है, उन पर उच्च न्यायालय को ध्यान केन्द्रित करना चाहिए था, जो स्वामी शान्तानन्द के निग्रह और स्वामी स्वरूपानन्द जी के अभिषेक के मुद्दे पर उसने नहीं किया।

यह सवाल आस्था और श्रद्धा का भी है। क्या करोड़ों हिन्दुओं पर केवल वसीयत के नाम पर एक अपात्र को थोपा जाना उचित और वैधानिक माना जा सकता है ? स्वामी ब्रह्मानन्द की एक वसीयत पीठ के संस्थापक आदि शंकराचार्य द्वारा रचित मठाम्नाय महानुशासनम् में दिये गये निर्देशों के ऊपर नहीं हो सकती।

यहां अन्तर्विरोध यह है कि जब 'योग्यता' के आधार पर उच्चन्यायालय ने स्वामी वासुदेवानन्द को अयोग्य घोषित किया है तो इसी

सिद्धान्त के अनुसार उसने स्वामी शान्तानन्द को अपात्र और अयोग्य क्यों नहीं माना ? अगर स्वामी वासुदेवानन्द के मामले में भी उसने 'वसीयत की तुलना में योग्यता को' वरीयता दी तो, स्वामी शान्तानन्द के मामले में उसने 'योग्यता के ऊपर वसीयत को' वरीयता क्यों दी ?

फिर जहां तक स्वामी शान्तानन्द को वसीयत में नामित किये जाने का प्रश्न है, स्वयं ब्रह्मानन्द जी ने उन्हें पूरी तरह अधिकृत नहीं किया क्योंकि उन्होंने स्वामी शान्तानन्द को अपने विवेक से अपना उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार ही नहीं दिया। बल्कि, उसे शर्तों से बाधित करते हुए उनके बाद शंकराचार्य बनाये जाने वाले तीनों लोगों के नामों की सूची स्वयं ही दर्ज कर दी।

जहां तक स्वामी शान्तानन्द के अभिषेक का प्रश्न है, यह सवाल महत्वपूर्ण है कि क्या यह तथाकथित अभिषेक शास्त्रीय दृष्टि से वैध और मान्य था ? क्योंकि यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि उनका यह कथित अभिषेक किसने किया ? जिनने किया क्या वे अधिकार सम्पन्न लोग थे ? यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है कि स्वामी शान्तानन्द के तथाकथित अभिषेक में कौन लोग अनुपस्थित थे ?

तथ्य यह है कि न तीनों शंकराचार्य, न भारत धर्म महामण्डल के प्रतिनिधि, और न काशी के विद्वान... कोई भी उपस्थित नहीं थे। यही नहीं स्वामी ब्रह्मानन्द जी के 40 में से 39 शिष्य अनुपस्थित थे। वैसे घटनाक्रम की वास्तविकता यह है कि स्वामी शान्तानन्द का अभिषेक शंकराचार्य पीठ पर कभी हुआ ही नहीं। उनके कुछ साथी अभिषेक के नाम पर जो घटित हुआ बताते हैं वह शास्त्रीय दृष्टि से मान्य अभिषेक नहीं था। और

केवल चयन हो जाने से, बिना विधि सम्मत अभिषेक के वे शंकराचार्य नहीं माने जा सकते। उदाहरण के लिए भारत के संविधान के तहत राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रिगण, यहां तक न्यायमूर्तिगण केवल चयन के आधार पर पद पर प्रतिष्ठित नहीं माने जाते। इसके लिए उन्हें विधिवत शपथ लेना पड़ती है। यही स्थिति शंकराचार्य पद के लिए 'विधिवत अभिषेक की है।'

धार्मिक परम्परांओं और मठाम्नाय महानुशासनम् के पालन की दृष्टि से ये वे महत्वपूर्ण बाते हैं, जिनकी अनदेखी इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले को इस मुद्दे पर विसंगतिपूर्ण बनाती हैं।

वसीयत की वैधता को मठाम्नाय महानुशासनम् और तथ्यों के तराजू पर तौला जाना चाहिए था

जिस वसीयत के आधार पर स्वामी शान्तानन्द को ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी ब्रह्मानन्द जी का वैध उत्तराधिकारी इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने मान लिया उस वसीयत की वैधता को मठाम्नाय-महानुशासन, जिसे स्वयं न्यायालय ने 'कानून' माना है, उसके मानकों पर कथित रूप से स्वामी ब्रह्मानन्द द्वारा की गई वसीयत के साथ जुड़े तथ्यों के तराजू पर तौला जाना चाहिए था। अगर वसीयत में स्वामी शान्तानन्द को नामित किये जाने को गुरु शिष्य-परम्परा के आधार पर मान लिया जाए तो यह उचित नहीं होगा। क्योंकि गुरु-शिष्य परम्परा में गुरु का वरिष्ठतम शिष्य ही उसका उत्तराधिकारी होता है। यदि वह किसी कारण योग्य न हो या वह उत्तराधिकार ग्रहण करने से इनकार कर दे तब वरिष्ठता क्रम में दूसरे, इसी

तरह तीसरे आदि को उत्तराधिकारी बनाया जा सकता है। जबकि इस वसीयत के मामले में स्वामी शान्तानन्द तो वरिष्ठता क्रम में बहुत निचले स्थान पर थे।

वास्तविकता यह थी कि स्वामी ब्रह्मानन्द जी के वरिष्ठतम शिष्य स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती करपात्री जी महाराज थे, जिन्होंने ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में उत्तराधिकार ग्रहण करने से इनकार कर दिया था। इसके बाद वरिष्ठता क्रम में दूसरा स्थान स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज का था। इस दृष्टि से वसीयत में उन्हें नामित किया जाना था। ऐसा न किये जाने का कोई कारण नहीं था, लेकिन ऐसा नहीं किया गया। इस लिहाज से वसीयत की वैधता पर पहला प्रश्न चिन्ह लगता है।

फिर वसीयत में वरिष्ठता का उल्लंघन तब भी हुआ जब स्वामी शान्तानन्द को प्रथम स्थान पर नामित किया गया। क्योंकि तथ्य यह है कि वसीयत में निचले क्रमों पर नामित श्री द्वारका प्रसाद त्रिपाठी, स्वामी विष्णुदेवानन्द और स्वामी परमानन्द ये तीनों ही स्वामी शान्तानन्द से वरिष्ठ थे। तो, स्पष्टत: यह 'वसीयत में' वरिष्ठता के उल्लंघन का दूसरा मामला था। जो वसीयत की वैधता के आगे दूसरा प्रश्न चिन्ह लगाता है।

अगर मठाम्नाय महानुशासनम् में निर्दिष्ट योग्यताओं के मान से इस वसीयत को देखें तो भी पूर्व में बताये जा चुके कारणों से स्वामी शान्तानन्द अयोग्य और अपात्र ही थे। तो, किस आधार पर उन्हें ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में नामित किया गया? यह वसीयत के आगे तीसरा प्रश्न चिन्ह है।

चौथा प्रश्न चिन्ह यह कि वसीयत में नामित चारों व्यक्ति गृहस्थ थे। उनमें कोई भी बाल ब्रह्मचारी नहीं था। इतने महत्वपूर्ण तथ्य की अनदेखी स्वामी ब्रह्मानन्द जी जैसे विद्वान महात्मा कदापि नहीं कर सकते थे। यह भी वसीयत की वास्तविकता पर शंका का महत्वपूर्ण आधार है।

अगर वसीयत को सही मानें तब भी स्वामी शान्तानन्द को वसीयत में नामित किये जाने पर यह सवाल उठता ही है कि क्या उन्हें सिर्फ इसलिए नामित किया गया कि वे स्वामी ब्रह्मानन्द के पूर्वाश्रम में उनकी बहन के पुत्र यानी उनके भांजे थे? स्वामी ब्रह्मानन्द जी एक निस्पृह और वीतराग सन्यासी थे, तब वे सन्यासी होते हुए अपने पूर्वाश्रम के रिश्तेदार को उसके अयोग्य और अपात्र होते हुए भी शंकराचार्य के रूप में अपना उत्तराधिकारी कैसे नामित कर सकते थे? यह सवाल भी वसीयत की वास्तविकता पर प्रश्न चिन्ह बन जाता है।

यह कैसी वसीयत थी जिसमें गुरु–शिष्य परम्परा के अनुरूप वरिष्ठता की घोर उपेक्षा की गई– योग्यता और अर्हता के मानकों की उपेक्षा की गई! क्या ऐसी वसीयत को वैध माना जा सकता है? क्या वसीयत की वैधता का परीक्षण इन तथ्यों की पृष्ठभूमि में नहीं किया जाना चाहिए था? क्या न्यायालयों ने ऐसा किया?

अगर वसीयत के पालन के विषय में विचार करें तो वसीयत का पालन न किये जाने का तथ्य प्रकाश में आता है। वसीयत में यह शर्त थी कि दूसरे स्थान पर नामित द्वारका प्रसाद त्रिपाठी अगर जीवित रहते हैं और वे दण्डधारण कर सन्यासी बन जाते हैं तो स्वामी शान्तानन्द के बाद उन्हें ही शंकराचार्य बनाया जाएगा, किसी और को नहीं। शर्त के अनुसार द्वारका

प्रसाद त्रिपाठी ने दण्डसन्यास ले लिया था। उनका नाम स्वामी द्वारकेशानन्द हो गया था। और, उन्होंने स्वामी शान्तानन्द को यह सूचना देकर शंकराचार्य पद स्वीकार करने केलिए अपनी सहमति भी बता दी थी। इसके बावजूद स्वामी शान्तानन्द ने स्वयं शंकराचार्य पद से इस्तीफा देते समय अपने स्थान पर उन्हें शंकराचार्य न बनाकर स्वामी विष्णुदेवानन्द को शंकराचार्य बना दिया। अर्थात् वसीयत की शर्त न मानकर उसका उल्लंघन किया।

हम कहना चाहेंगे कि वसीयत का पालन पूर्णता में होना चाहिए, यदि उसका उल्लंघन किया जाए तो फिर लाभार्थी वसीयत का लाभ नहीं ले सकता। स्पष्ट है कि स्वामी शान्तानन्द वसीयत का लाभ लेने के अधिकारी नहीं रह गये थे। और इस कारण न केवल स्वामी ब्रह्मानन्द जी की, बल्कि स्वामी शान्तानन्द जी की वसीयत की वैधता ही समाप्त हो गयी थी।

गुरु -शिष्य परम्परा का निर्वहन भी नहीं हुआ

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने जिस गुरु-शिष्य परम्परा के आधार पर स्वामी शान्तानन्द, स्वामी विष्णुदेवानन्द और स्वामी वासुदेवानन्द की क्रमिक रूप से की गई वसीयतों को वैध बताया है वह भी त्रुटिपूर्ण है। यह हम लिख चुके हैं कि स्वामी द्वारकेशानन्द के दावे को ठुकरा दिये जाने के कारण स्वामी विष्णुदेवानन्द को शंकराचार्य बनाया जाना अवैध था क्योंकि ऐसा किये जाने से स्पष्टतः वसीयत का उल्लंघन हुआ था। तो, जब स्वामी

विष्णुदेवानन्द का स्वयं का शंकराचार्य बनना ही अवैध था तो उनके द्वारा स्वामी वासुदेवानन्द के लिए लिखी गई वसीयत भी अवैध ही थी।

स्वामी विष्णुदेवानन्द की कथित वसीयत में यह लिखा गया कि अगर मैं अपने जीवनकाल में स्वामी वासुदेवानन्द को शंकराचार्य न बना सकूं, तो मेरे अग्रज स्वामी शान्तानन्द को अधिकार होगा कि वे मेरे बाद स्वामी वासुदेवानन्द को या किसी अन्य को शंकराचार्य बना दें। यह अधिकार - प्रयोग के सिद्धांत का उल्लंघन था। क्योंकि व्यक्ति स्वयं तो अधिकार का प्रयोग कर सकता है, लेकिन अधिकार का हस्तान्तरण नहीं कर सकता। यह वैधानिक नहीं है।

उच्च न्यायालय ने ज्योतिष्पीठ पर स्वामी कृष्णबोधाश्रम की नियुक्ति के विषय में लिखा है कि वे स्वामी ब्रह्मानन्द के शिष्य नहीं थे इसलिए उन्हें गुरु-शिष्य परम्परा के अनुकूल नहीं माना जा सकता। इस दृष्टि से अगर गुरु-शिष्य परम्परा के मान से भी देखें तो स्वामी विष्णुदेवानन्द स्वामी शान्तानन्द के नहीं, स्वामी ब्रह्मानन्द जी के शिष्य थे अर्थात् स्वामी शान्तानन्द के शिष्य नहीं, गुरुभाई थे। इसी तरह स्वामी वासुदेवानन्द स्वामी विष्णुदेवानन्द के नहीं, बल्कि स्वामी शान्तानन्द के शिष्य थे। तो फिर गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वहन कहां हुआ ? स्पष्ट है कि गुरु शिष्य परम्परा के आधार पर भी इनके पक्ष में की गई वसीयतें और नियुक्तियां भी अपने आप में अवैध हैं।

जहां तक स्वामी वासुदेवानन्द के पक्ष में स्वामी विष्णुदेवानन्द द्वारा कथित वसीयत का प्रश्न है, उस पर उनके हस्ताक्षरों को न्यायालय में कूटरचित बताया जा चुका है। क्योंकि विशेषज्ञ स्वामी विष्णुदेवानन्द के

हस्ताक्षर की पुष्टि नहीं करते। यही नहीं, अगर स्वामी विष्णु देवानन्द स्वामी ब्रह्मानन्दजी की मूल वसीयत से हटकर स्वामी वासुदेवानन्द को उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे तो उन्हें अपनी वसीयत के साथ उन स्वामी परमानन्द का मृत्यु प्रमाण-पत्र संलग्न करना चाहिए था, जिनका नाम स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती की कथित वसीयत में शंकराचार्य बनाये जाने के लिए अन्तिम क्रम पर था और जिन्हें स्वामी विष्णुदेवानन्द के बाद शंकराचार्य बनाये जाने की शर्त थी। वैसे तो यह बात भी अपनी जगह है किन्तु प्रथम सच यह है कि स्वयं स्वामी विष्णुदेवानन्द को ही वसीयत का उल्लंघन होने के कारण शंकराचार्य बनाया जाना अवैध था।

स्पष्ट है कि न स्वामी ब्रह्मानन्द जी की वसीयत का पालन हुआ था, न गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह हुआ तो ये नियुक्तियां अवैध ही तो थीं। इस बारे में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा संज्ञान न लिया जाना किसी को भी आश्चर्यचकित करेगा ही।

एक बार फिर अगर सन्यास की बात करें तो, न सिर्फ स्वामी वासुदेवानन्द, बल्कि, उनके गुरु स्वामी शान्तानन्द भी दण्ड सन्यास के लिए अपात्र हो गये थे। क्योंकि दोनों ने विदेश यात्रा की थी, जो दण्ड सन्यास के नियमों का उल्लंघन है। इस बात को स्वयं स्वामी वासुदेवानन्द ने अपनी पुस्तक मेरे गुरुदेव में स्वीकार किया है और इस तथ्य को स्वयं उच्चन्यायालय ने भी माना है। जब विदेश यात्रा करने के कारण दण्ड ही अशुद्ध हो गया, सन्यास भंग हो गया तो शंकराचार्य बनने की पात्रता भी समाप्त हो गई। फिर इन्हें वैध कैसे माना जा सकता है ?

इसीलिए यह प्रश्न उठा कि उच्च न्यायालय ने फैसले की तारीख से स्वामी वासुदेवानन्द को अपात्र बताकर ज्योतिष्पीठ की गद्दी खाली क्यों

बतायी ? अगर स्वामी वासुदेवानन्द अपात्र और अयोग्य ठहराये गये तो वे पहले से ही अपात्र और अयोग्य थे।

तब यह अयोग्यता फैसले के दिन से प्रभावी कैसे मानी जा सकती है ? जब आयोग्यता पहले से ही थी तो, ज्योतिष्पीठ की गद्दी भी पहले से रिक्त मानी जाना चाहिए।

यो, हमारा मानना है कि वह तो तब भी रिक्त ही थी, जब मनीषियों द्वारा मठाम्नाय-महानुशासनम् के निर्देश का पालन करते हुए स्वामी शान्तानन्द का निग्रह कर दिया गया था। अर्थात् स्वामी ब्रह्मानन्द जी के ब्रह्मलीन होने की तिथि से ही गद्दी रिक्त थी। इस तथ्य की उपेक्षा इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा किया गया जाना एक बड़ी विसंगति है।

ज्योतिष्पीठ की गद्दी रिक्त थी तो इतने वर्षों तक ज्योतिष्पीठ कौन सम्हाल रहा था ?

भले इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अपने फैसले की तारीख से ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य की गद्दी को रिक्त माना हो, लेकिन इसी फैसले का एक निहितार्थ यह भी है कि अपात्र को शंकराचार्य न माना जाए तो गद्दी उसी दिन से रिक्त मानी जायेगी, जिस दिन से अपात्र ने स्वयं को शंकराचार्य घोषित किया। जबकि तथ्यों के आधार पर हमारा मानना है कि गद्दी तो स्वामी ब्रह्मानन्द जी के ब्रह्मलीन होने के साथ ही रिक्त मान ली जायेगी क्योंकि उच्च न्यायालय ने ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में स्वामी कृष्णबोधाश्रम की नियुक्ति को भी अवैध ठहरा दिया है। किन्तु स्वयं उच्च

न्यायालय ने यह माना है कि 7 दिसम्बर 1973 को स्वामी स्वरूपानन्द जी का ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में अभिषेक हुआ। तथापि उच्च न्यायालय ने इस आधार पर ज्यातिष्पीठाधीश्वर के रूप में उनकी नियुक्ति को वैध नहीं माना है कि उस समय गद्दी खाली नहीं थी, क्योंकि उस पर स्वामी शान्तानन्द आसीन थे। जबकि यह बताया जा चुका है स्वामी शान्तानन्द का निग्रह निर्णायक ढंग से मनीषियों द्वारा किया जा चुका था।

यह भी न्यायालय के सम्मुख बताया जा चुका है कि स्वामी कृष्णबोधाश्रम की अस्वस्थता के कारण स्वामी स्वरूपानन्द जी शंकराचार्य पद के दायित्व निर्वहन में उनकी सहायता कर रहे थे। यहां हम इस तथ्य का उल्लेख करना चाहेंगे स्वयं उच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में जिन राजा सुधन्वा और उनके ताम्रपत्र का जिक्र किया है उसके 32 वें बिन्दु में लिखा गया है- 'महद्विनिर्णय प्रसक्तौ तु सुरेश्वराचार्य्या एवोक्त लक्षणत:।' अर्थात किसी विवाद की स्थिति में द्वारका के शंकराचार्य का निर्णय मान्य होगा। इस परिप्रेक्ष्य में यह उल्लेख है कि जब ज्योतिष्पीठ में विवाद की स्थिति बनी, द्वारका के तत्कालीन शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ ने स्वामी कृष्णबोधाश्रम को ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य घोषित किया था। स्पष्टत: ताम्रपत्र के निर्देशानुसार द्वारका के शंकराचार्य के निर्णय के परिप्रेक्ष्य में ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में स्वामी कृष्णबोधाश्रम की नियुक्ति वैधमानी जाना चाहिए।

सवाल उठता है कि अगर इतने सालों से ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य की गद्दी को खाली मान लिया जाए तो ज्योतिष्पीठ का कामकाज सम्हाल कौन रहा था?

इस सवाल का जवाब इतिहास में ढूंढ़ा जाना चाहिए। देखा जाना चाहिए कि इसी अवधि में वह कौन था, जिसे राष्ट्रपतियों प्रधानमंत्रियों केन्द्रीय मंत्रियों और राज्यों के मुख्यमंत्रियों से ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में सम्मान मिलता रहा था? वह कौन था, जिस पर ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में देश में जगह-जगह जनता, श्रद्धा के फूल बरसा कर उसके प्रति सम्मान व्यक्त कर, उससे आशीर्वाद और मार्गदर्शन प्राप्त कर उसमें अपनी आस्था इतने वर्षों से प्रकट कर रही थी? वह कौन था जिसका ज्योतिष्पीठ पर विधिवत अभिषेक हुआ और शंकराचार्य के रूप में मनीषीगण जिस पर ससम्मान विश्वास करते रहे हों? वह कौन था, जिसे चतुष्पीठ सम्मेलनों में ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में सम्मान मिलता रहा हो? वह कौन है जो निरन्तर इतने वर्षों में ज्योतिष्पीठ की उन्नति के लिए इन तमाम वर्षों में कार्य करता रहा है? वह कौन है, जिसका ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य के रूप में सम्मान करके नेपाल नरेश ने पूरी दुनिया को एक संदेश दिया ? वह कौन है, जिससे इतने वर्षों में सरकार द्वारा गठित बदरीनाथ-केदारनाथ कमेटी इन मन्दिरों में पूजा-अर्चना और इनके प्रबन्धन में निरन्तर मार्गदर्शन लेती रही है? वह कौन है, जो इतने वर्षों में अहर्निश वैदिक सनातन धर्म का प्रचार और हिन्दू हितों की रक्षा करते हुए दीन-हीनों, वनवासियों की सेवा करके उनकी सुध लेकर सनातन धर्म के प्रति उनमें आस्था को सुदृढ़ बनाता रहा है?

इन तमाम प्रश्नों का उत्तर एक ही नाम में मिलता है। और, वह नाम है श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज का। इन तमाम

कार्यों ने उन्हें कोटि-कोटि हिन्दुओं की श्रद्धा और आस्था का केन्द्र बना दिया है। ऐसा योग्यता प्राप्त और मठाम्नाय में वर्णित लक्षणों से युक्त सन्यासी को कलम से एक लाइन लिखकर काम करने से रोक दिये जाने से क्या करोड़ों हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस नहीं लगेगी? क्या वे दिग्भ्रमित नहीं होंगे? उचित होता कि शास्त्रीय आधार पर और लोकहित की दृष्टि से इतिहास को तौलते हुए उन्हें ही ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा भी मान्य किया जाता। अब करोड़ों हिन्दू चाहेंगे कि अगर त्रुटि या चूक हुई है तो उसे उचित रीति और प्रक्रिया से तत्काल सुधारा जाए।

फैसले में विधि सम्बंधी विसंगतियां भी हैं

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में स्वामी स्वरूपानंद जी के अभिषेक को वैध न ठहराने का जो निर्धारण किया है और अन्य तीन पीठों के शंकराचार्यों, भारत धर्म महामण्डल और काशी विद्वत् परिषद को तीन माह में ज्योतिष्पीठ का नया शंकराचार्य चुनने का जो आदेश दिया है, उसमें विधि सम्बंधी महत्वपूर्ण विसंगतियां हैं।

यहां यह प्रश्न उठता है कि अगर स्वामी वासुदेवानन्द ने छद्मनाम से नौकरी करके वेतन लिया है तो क्या इसे केवल सन्यासी होने के लिए अपात्र मानकर बात को यों ही समाप्त किया जा सकता है? छल करने और धोखाधड़ी करने के लिए अपराधी मानकर उन्हें दण्डित किये जाने का आदेश भी तो किया जाना चाहिए था जो नहीं किया गया।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि विचाराधीन प्रकरण अपील थी, रिट नहीं। और, अपील में अपीलार्थी ने जो अनुतोष मांगा था वह सीमित था। अपीलार्थी ने तो केवल स्वयं को ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य घोषित करने पर लगी रोक हटाने की मांग की थी। तो, अपील में इसी विषय में निर्णय होना था। इसमें स्वामी स्वरूपानन्द जी के अभिषेक पर निर्णय देने का अवसर ही नहीं था।

दूसरे, इस प्रकरण में तीनों अन्य पीठों के शंकराचार्य, भारत धर्म महामण्डल और काशी विद्वत् परिषद पक्षकार ही नहीं थे। तब जो लोग पक्षकार नहीं थे, उन्हें कोई आदेश न्यायालय कैसे दे सकता है ? और, कैसे वह आदेश उन पर बन्धनकारी हो सकता है ? आज अगर वे इस आदेश को अपने लिए बन्धनकारी न मानकर उस पर अमल न करें तो क्या ज्योतिष्पीठ में अराजकता और भ्रम की स्थिति नहीं बन जायेगी ?

यों, सचमुच इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने निर्णय लिखने में बहुत शोध और परिश्रम किया है। आदि शंकराचार्य के काल निर्धारण पर उनके द्वारा किया गया कार्य व्यापक शोध कार्य से कम नहीं है। देश के तत्कालीन इतिहास, आद्य शंकराचार्य के समकालीन चाहमान (चौहान) वंशी राजा सुधन्वा के कार्यकाल, आद्य शंकराचार्य द्वारा रचित मठाम्नाय महानुशासनम् के रचनाकाल और सन्यास की विभिन्न परम्पराओं और नियमों आदि पर भी विद्वान न्यायाधीशों ने गहन शोध करके विस्तृत आदेश में अपने निष्कर्ष दिये हैं। निर्णय को पढ़ने वाले किसी के लिए भी यह शोध सहज ही बोधगम्य हैं और उनका अपना महत्व सदैव होगा।

लेकिन वाद प्रश्नों के सवाल पर जिन विसंगतियों की बातें उठ रही हैं, उनका समाधान भी उचित और वैधानिक रूप से आवश्यक है। हमारा मानना है कि गुरु-शिष्य परम्परा के नाम पर अगर वसीयत की परम्परा मान ली जाये तो धर्म क्षेत्र में घातक विकृतियां उभरने लगेंगी। उदाहरणार्थ- इसी प्रकरण में स्वामी ब्रह्मानन्द जी की कथित वसीयत की बात करें तो, हर कोई यह जानता है कि कैसे उसमें योग्यता की अनदेखी कर भाई-भतीजावाद को प्रश्रय मिला और वसीयतकर्ता ने अपने पूर्वाश्रम के भांजे(बहन के पुत्र) को ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया। अगर बजाय मठाम्नाय महानुशासनम् में निर्दिष्ट योग्यताओं को वरीयता देने के, वसीयत का मार्ग ही वैध मान लिया गया तो लोग अपने ही भाई-भतीजों को शंकराचार्य की गद्दी विरासत में देने लगेंगे। अगर इसे ही उचित माना गया तो मठों की सम्पत्तियां कौटुम्बिक सम्पत्तियां बनकर रह जायेंगी। जिससे धर्म के प्रति लोगों में अनास्था निर्मित होगी। इसीलिए तो गृहस्थ को शंकराचार्य न बनाने का प्रावधान है।

जहां तक वसीयत और उसमें स्वामी शान्तानन्द को नामित किये जाने का सवाल है, उस काल के लोग जानते हैं कि इस खेल के पीछे वास्तव में खेल कौन खेल रहा था! ज्योतिष्पीठ की गद्दी में रुचि रखने वाला एक अदृश्य हाथ था, जिसकी भूमिका स्वामी ब्रह्मानन्द जी की मृत्यु, उनकी सम्पत्ति और उनकी तथाकथित वसीयत को लेकर चर्चित रही थी। लेकिन यहां न्यायालय के निर्णय के परिप्रेक्ष्य में उसकी चर्चा करना न जरूरी है, न अपेक्षित और न उचित।

स्वामी शान्तानन्द की अयोग्यता और उनका निग्रह

स्वामी शान्ताान्द की अयोग्यता और उनका निग्रह किया जाना अत्यंत महत्वपूर्ण बिन्दु है। हमारा मानना है कि "निग्रह" का अर्थ "हटाना" नहीं, बल्कि, निषेध करना या वंचित होना चाहिए। इस दृष्टि से इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए 11.07.1953 को स्वामी शान्तानन्द ने स्वामी ब्रह्मानन्द के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् जब ज्योतिष्पीठ के लिए अपने पक्ष में उत्तराधिकार प्रमाण पत्र के लिए याचिका प्रस्तुत की, तब स्वामी स्वरूपानन्द ने उस पर तत्काल आपत्ति की थी, जिसे मिसलेनियस केस 44/1953 के रूप में पंजीयत किया गया। क्या यह स्वामी शान्तानन्द का निग्रह करना नहीं था? इस आपत्ति के पक्ष में स्वामी परमानन्द सरस्वती और तीन अन्य ने स्वामी शान्तानन्द की अपात्रता पर जोर दिया था और स्पष्ट रूप से कहा था कि स्वामी शान्तानन्द आदि शंकराचार्य द्वारा मठाम्नाय महानुशासनम् में वांछित योग्यताएं नहीं रखते (पृष्ठ 52)।

* उच्च न्यायालय ने अपने विस्तृत निर्णय में उल्लेख किया है कि इस पृष्ठभूमि में वाद क्र. 3/1954 प्रस्तुत किया गया, जिसमें यही आधार लिया गया। और इस वाद में एकमात्र प्रतिवादी स्वामी शान्तानन्द ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी की वसीयत के आधार पर उन्हें शंकराचार्य बना दिये जाने का दावा करते हुए प्रतिवाद किया।

* इसी प्रकरण क्रमांक 3/1954 में वसीयत को वैध ठहराते हुए भी लोअर कोर्ट ने असंदिग्ध शब्दों में अपने फैसले में लिखा कि स्वामी शान्तानन्द शंकराचार्य के पद के लिए वांछित योग्यताएं नहीं रखते और स्वामी ब्रह्मानन्द जी उन्हें ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य पद के लिए अपना उत्तराधिकारी नामित नहीं कर सकते थे। अतः शंकराचार्य पद पर उनकी नियुक्ति अवैध है।

* लेकिन कोर्ट ने यह मुकदमा एक तकनीकी चूक को लक्षित करके यह निर्धारित करते हुए खारिज कर दिया कि इसमें स्वामी कृष्णाबोधाश्रम अनिवार्य पक्ष थे और उन्हें पक्षकार बनाया ही नहीं गया। इसलिए स्वामी कृष्णाबोधाश्रम की शंकराचार्य पद पर नियुक्ति की वैधता का निर्णय इस वाद में नहीं किया जा सकता। अर्थात् स्वामी शान्तानन्द को असंदिग्ध रूप से अयोग्य और स्वामी ब्रह्मानन्द की वसीयत को अवैध माना गया। अगर स्वामी कृष्णबोधाश्रम को भी पक्ष बनाया गया होता तो ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में उनके चयन और नियुक्ति पर विचार किया जाता।

* सारे विवाद के मूल में इन बातों पर उच्च न्यायालय को ध्यान देना था, लेकिन वह वसीयत और गुरु-शिष्य परम्परा तक सीमित रह गया। यह बातें इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि अधीनस्थ कोर्ट ने इस मामले में आगे और भी टिप्पणियां की थीं, जो, सदैव प्रासंगिक हैं। न्यायालय ने लिखा कि प्रतिवादी स्वामी शान्तानन्द यद्यपि ट्रस्टी ड सॉनटॉर्ट हैं, लेकिन उन्हें कानून के मुताबिक शंकराचार्य पद और ज्योतिष्पीठ के ट्रस्ट से हटाया जाना चाहिए। लेकिन इसके लिए समुचित वाद उपस्थित होना चाहिए। ज्योतिष्पीठ की सम्पत्तियां ट्रस्ट की सम्पत्तियां हैं और वैधानिक रूप से नियुक्त कोई शंकराचार्य ही उनका स्वामी होकर मठाम्नाय महानुशासनम् में निर्धारित निर्देशों के अनुरूप उनका धारण कर उनका प्रबंधन स्वामी ब्रह्मानन्द जी की वसीयत और 1941 की भारत महामण्डल की 11.05.1944 की ट्रस्ट डीड के अनुरूप कर सकता है।

न्यायालय ने लिखा कि प्रतिवादी (स्वामी शान्तानन्द) वैधानिक रूप से शंकराचार्य नहीं हैं और हटाये जाने योग्य हैं। परन्तु प्रस्तुत वाद सीपीसी की धारा 92 के अन्तर्गत विचारण योग्य नहीं है।

स्पष्टतः स्वामी स्वरूपानन्द जी के ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में अभिषेक के समय स्वामी शांतानन्द धर्म क्षेत्र में मान्य

ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य नहीं थे। क्योंकि मनीषीगण ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में उनके नाम का विरोध करके उनका निग्रह कर चुके थे। और न्यायालय स्पष्ट शब्दों में उन्हें अपात्र घोषित कर उन्हें शंकराचार्य पद से हटाये जाने योग्य करार दे चुका था।

स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी के ब्रह्मलीन होने पर मठाम्नाय महानुशासनम के प्रावधान के अन्तर्गत मनीषियों ने स्वामी स्वरूपानन्द जी को ही मान्य शंकराचार्य घोषित किया था। इस संबंध में शीर्षस्थ धार्मिक संस्थाओं और अन्य पीठों के शंकराचार्यों की लिखित घोषणा तथा उनके द्वारा स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी के ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में अभिषेक का विवरण पहले ही दिया जा चुका है।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी के सुपात्र वरिष्ठतम शिष्य तो स्वामी स्वरूपानन्दजी थे

हमारे मतानुसार यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि ब्रह्मानन्द जी की कथित वसीयत के आधार पर जब शान्तानन्द जी ने ज्योतिष्पीठ की गद्दी पर दावा किया था, तभी तीनों शंकराचार्यों व अन्य ने उसे इस आधार पर ठुकरा दिया था कि वे (स्वामी शान्तानन्द) योग्य नहीं थे। दूसरे, स्वामी ब्रह्मानन्द जी ज्योतिष्पीठ की सम्पत्ति के ट्रस्टी थे और ट्रस्ट की सम्पत्ति का निस्तारण वसीयत से नहीं कर सकते थे।

जहां तक गुरु-शिष्य परम्परा का प्रश्न है, 'स्वामी स्वरूपानन्द जी अर्हताएं प्राप्त होने के साथ ब्रह्मानन्द जी के शिष्यों में शान्तानन्द जी से वरिष्ठ थे क्योंकि उनकी दण्ड दीक्षा 1950 में ही हो गई थी,

जबकि स्वामी शान्तानन्द की दण्डदीक्षा 1951 में हुई, उसमें भी अशुद्धि थी वह नवरात्रि में तब हुई जब सूर्य उत्तरायण नहीं था। दक्षिणायन सूर्य में दण्ड दीक्षा नहीं होती थी।

यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि स्वामी शान्तानन्द जी ने, जिनका पूर्व आश्रम में नाम राम जी त्रिपाठी था 28.4.1980 को ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य पद से इस्तीफा इसीलिए दिया था क्योंकि वे अपने क्रियाकलापों का स्पष्टीकरण देने में और शंकराचार्य की गद्दी पर बैठने में स्वयं को अक्षम पा रहे थे। यह भी उनकी अनर्हता की ही पुष्टि करता है। जहां तक गुरु-शिष्य परम्परा का प्रश्न है स्वामी स्वरूपानन्द जी अर्हताएं प्राप्त होने के साथ ब्रह्मानंद जी के शिष्यों में शान्तानन्द जी से वरिष्ठ थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी के शिष्यों मे स्वामी स्वरूपानन्द के वरिष्ठतम शिष्य होने के कारण ही स्वामी ब्रह्मानन्द जी के ब्रह्मलीन होने पर उनके और्ध्व दैहिक संस्कार के लिए बनी अंतरिम कमेटी का अध्यक्ष स्वामी स्वरूपानन्द जी को बनाया गया था।

इस पद के दायित्व का निर्वहन करते हुए स्वामी स्वरूपानन्द जी ने सारी विधियां संपूर्ण कराईं। लेकिन जब कथित वसीयत के आधार पर स्वामी शान्तानन्द जी ने शंकराचार्य पद पर दावा किया, तब तीनों शंकराचार्यों, करपात्री जी और स्वामी ब्रह्मानन्द जी के अन्य वरिष्ठ शिष्यों के साथ ही स्वामी स्वरूपानन्द जी ने भी उन्हें अयोग्य करार दिया।

7 दिसम्बर 1973 से ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द जी ही मान्य हैं। तब से निरन्तर ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में वे कुशलतापूर्वक एवं अधिकारपूर्वक शंकराचार्य पद के दायित्वों और कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे हैं।

इस सम्बंध में बद्रीनाथ-केदारनाथ मन्दिर समिति ने जो कि इन मन्दिरों के संचालन/प्रबंधन के लिए सरकार द्वारा गठित है, 27 अक्टूबर 2004 को अपनी बैठक में जो प्रस्ताव पारित किया है, वह महत्वपूर्ण है।

इस प्रस्ताव में समिति ने घोषणा की है कि ".... उत्तरांचल प्रदेश ज्योतिर्मठ के क्षेत्र में आता है और परम्परानुसार इस क्षेत्र में किए जाने वाले धार्मिक कार्यों में ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य ही अंतिम निर्णायक और निर्देशक होते हैं। खेद की बात है कि इस समय अनेकों व्यक्ति स्वयं को ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य कहते घूम रहे हैं। ऐसे में जनता दिग्भ्रान्त है। इसलिए बद्रीनाथ-केदारनाथ मन्दिर समिति यह स्पष्ट करती है कि पूज्यपाद अनन्तश्री विभूषित स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज ही ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य हैं। इन्हीं को देश की अन्य तीनों पीठों के शंकराचार्य ने भी मान्यता दी है और बद्रीनाथ-केदारनाथ मन्दिर समिति भगवान बद्रीनाथ एवं केदारनाथ आदि मन्दिरों की पूजा-अर्चना आदि में इन्हीं के निर्देश मानती आ रही है। मन्दिर समिति के निवेदन पर इन्हीं के द्वारा भगवान आदि शंकराचार्य की गुफा, जोशी मठ तथा शंकराचार्य जी की समाधि केदारनाथ का भी जीर्णोद्धार हो रहा है।"

यह प्रस्ताव स्पष्ट करता है कि 44 वर्षों से ज्यातिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी की लोकमान्यता, शासकीय मान्यता और धार्मिक मान्यता कितनी प्राचीन और कितनी निरन्तर है। उसे अचानक रोका जाना असामान्य है।

धार्मिक प्रक्रियाओं के विषय में शास्त्र ही निर्देशक

हमारा मानना है कि धार्मिक प्रक्रियाओं के विषय में निर्णय शास्त्रों के अनुसार ही हो सकता है। इसलिए शंकराचार्य के विषय में निर्णय मठाम्नाय महानुशासनम् के प्रावधानों के अन्तर्गत ही हो सकता है। इसलिए तीन शंकराचार्यों और भारत धर्म महामण्डल तथा काशी के विद्वानों द्वारा शंकराचार्य के चयन का उच्च न्यायालय का आदेश मठाम्नाय – महानुशासनम् में निर्दिष्ट प्रावधानों के अनुकूल नहीं है।

अगर यह आदेश माना जाए तो ज्योतिष्पीठ हमेशा के लिए शेष तीनों पीठों के अधीन हो जायेगी। क्योंकि इसके तहत ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य का चयन तीन पीठों के शंकराचार्य करेंगे। ऐसी व्यवस्था मठाम्नाय में नहीं की गई है। द्वारका, श्रृंगेरी, पुरी पीठों की तरह ज्योतिष्पीठ की अपनी परम्पराएं हैं। चारों शंकराचार्य स्वतंत्र हैं और उन्हें स्वतंत्र ही रहने दिया जाना चाहिए।

अगर न्यायालय के इस आदेश की दृष्टि से देखें तो न्यायालय द्वारा स्वामी शान्तानन्द को ज्योतिष्पीठाधीश्वर की गद्दी पर विराजमान माने जाने का आदेश दिये जाने में अन्तर्विरोध स्पष्ट है। क्योंकि उन्हें तो भारत धर्म महामण्डल, तीनों शेष पीठों के शंकराचार्यों और काशी के विद्वानों ने शंकराचार्य माना ही नहीं था। इनमें से किसी ने भी शान्तानन्द जी का ज्योतिष्पीठ पर अभिषेक किया ही नहीं था।

यही नहीं, तीन बार 1979, 1993 और 2007 में जो चतुष्पीठ सम्मेलन हुए उनमें शांतानन्द जी को बुलाया ही नहीं गया। अगर तीनों शंकराचार्य शान्तानन्द जी को ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य मान रहे होते तो उन्हें बुलाया जाता। बल्कि तीनों ही बार ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द जी को ही ससम्मान स्थान प्राप्त हुआ।

जहां तक शान्तानन्द जी को गद्दीनशीन माने जाने और इसका कारण स्वामी स्वरूपानन्द जी के अभिषेक को वैध न ठहराये जाने का प्रश्न है, हम मानते हैं कि न्यायालय ने सीमा से परे जाकर यह फैसला दिया है, क्योंकि प्रकरण में यह न तो विचाराधीन विषय था, न मुद्दा। स्वयं अपीलार्थी स्वामी वासुदेवानन्द ने भी न्यायालय से यह अनुतोष नहीं मांगा था। तब अचानक इस बिन्दु को विचारण में लेकर और इस पर निर्णय देकर न्यायालय ने एक तरह से अधिकार सीमा का अतिक्रमण किया है। क्या यह एक तकनीकी और विधिक चूक है? और इस आधार पर अगर स्वामी स्वरूपानन्द जी सर्वोच्च न्यायालय में जाने को वरीयता दें तो किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

यहां कुछ बातें ध्यान विशेष रूप से देने योग्य हैं। स्वामी स्वरूपानन्द जी 44 वर्षों से ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में बदरिकाश्रम के शंकराचार्य के रूप में दायित्व निर्वहन कर रहे हैं। ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द जी ने उत्तराखण्ड में तोटकाचार्य जी की गुफा की खोजकर उसका जीर्णोद्धार कराया। मठ का निर्माण कराया । आद्य शंकराचार्य जी की गुफा का जीर्णोद्धार कराया। अनेक स्थानों पर चल चिकित्सालय, एम्बुलेंस शुरू कराये। झारखण्ड में विश्व कल्याण आश्रम में वनवासियों के लिए अस्पताल बनवाया। मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जिले के झोंतेश्वर में नेत्र चिकित्सालय बनवाया। पूरे देश में उन्होंने लगभग 70 प्रकल्पों की स्थापना की है। इनमें अनेक विशाल मन्दिर, विद्यालय, संस्कृत विद्यालय, अस्पताल, गोशालाएं, अन्न क्षेत्र आदि हैं। इनमें से कई दुर्गम स्थलों पर सघन वन क्षेत्रों में हैं जिनका लाभ विशेष रूप से वनवासी और निर्धन लोगों को मिलता है। अन्न -क्षेत्रों में आम तीर्थ यात्रियों के साथ

ही विपन्नों और भूखों को भी भोजन मिलता है। जरूरतमंदों को समय-समय पर वस्त्र वितरित किये जाते हैं। ज्योतिष्पीठ के अन्य दावेदारों में किसने ऐसे कार्य किये ? ऐसी स्थिति में अचानक उनको पीठाधिपति के रूप में कार्य करने से रोके जाने से इन सबमें अव्यवस्था फैलेगी।

आसान नहीं है योग्याताओं का धारक सन्यासी ढूंढ़ना

स्वामी स्वरूपानन्दजी सरस्वती एक प्रकाण्ड विद्वान और योग्यताओं को धारक विरले स्वामी हैं। मठाम्नाय-महानुशासनम् में वर्णित अर्हताओं वाले सन्यासी सहज ही उपलब्ध नहीं हैं। इसीलिए शंकराचार्यों सहित मनीषियों ने उन्हें दो-दो पीठों का जगद्गुरु शंकराचार्य बनाया। स्वामी जी 93 वर्ष के हैं और उनमें करोड़ों हिन्दुओं की आस्था व श्रद्धा है। अचानक इस तरह ज्योतिष्पीठ को रिक्त घोषित करने पर विराट हिन्दू समाज आहत व दिग्भ्रमित होगा।

हमारा मानना है कि इस इतिहास को नहीं बदला जा सकता, लेकिन वर्तमान की चिंता करते हुए भविष्य को संवारा जा सकता है। चवालीस सालों के इतिहास और उपलब्धियों पर कलम की एक जुम्बिश से पानी नहीं फेरा जा सकता।

यह बात ध्यान में रखना जरूरी है कि मठाम्नाय महानुशासनम् में वर्णित अर्हताओं और योग्यताओं वाला सन्यासी ही शंकराचार्य बनाया जा सकता है और ऐसा कोई सन्यासी बड़ी मुश्किल से उपलब्ध होता है और नये शंकराचार्य का चयन साधारण या सामान्य नहीं होता। इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट अवधि में ऐसी असाधारण अर्हता वाला सन्यासी ढूंढ़ना सरल और बात नहीं है। इसलिए चयन प्रक्रिया को समय सीमा में बांधा जाना उचित नहीं है।

अर्हता के धारक सन्यासियों की कमी दूर करने के लिए ही तो स्वयं स्वामी स्वरूपानन्द जी ने न केवल कई तपोनिष्ठ ब्रह्मचारी तैयार किये हैं वरन् कुछ बालब्रह्मचारी सन्यासियों को दण्ड दीक्षा देकर अपने मार्गदर्शन में उनकी शिक्षा–दीक्षा एवम् साधना की श्रेष्ठतम व्यवस्था भी की है। इसका उद्देश्य ही शुचिर्जितेन्द्रिय, वेदवेदांग विशारद सिद्ध सन्यासी समाज को सौंपना है। स्वामी स्वरूपानन्द जी के इन प्रयत्नों से कालान्तर में ऐसे कुछ अर्ह सन्यासी अवश्य उपलब्ध होंगे, जो शंकराचार्य पद के लिए योग्य होंगे।

शंकराचार्य पद के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण शर्त आद्य शंकराचार्य द्वारा निर्धारित अर्हता ही है और ऐसी विरली अर्हता धारण करने वाले महात्मा स्वामी स्वरूपानन्द जी हैं। इसीलिए उन्हें ज्योतिष्पीठ (1973) के साथ द्वारका पीठ (1982) का शंकराचार्य भी बनाया गया। ऐसी स्थिति में उन्हें बदरिकाश्रम के शंकराचार्य के रूप में कार्य करने से रोकना शांकर परम्परा के लिए किसी आघात से कम नहीं होगा।

जहां तक बदरिकाश्रम- ज्योतिष्पीठ का प्रश्न है, 165 वर्षों तक शंकराचार्य विहीन होने से वहां शंकराचार्य परम्परा विच्छिन्न रही आयी। अब अगर स्वामी स्वरूपानन्द जी को 44 वर्षों तक इस पीठ के शंकराचार्य के रूप में दायित्व निर्वहन के बाद इस दायित्व का निर्वहन करने से रोका गया तो यह परम्परा एक बार फिर विच्छिन्न हो जाएगी।

परम्परा विच्छिन्न हो जाने का पूर्व में हिन्दूधर्म पर जो दुष्प्रभाव पड़ा वह सबके सामने है। इतनी लम्बी अवधि तक ज्योतिष्पीठ के क्षेत्र में हिन्दुओं को समुचित धार्मिक मार्गदर्शन देने और धर्म के प्रति लोगों की

चेतना बरकरार रखने वाला कोई शंकराचार्य नहीं था। इससे भ्रम और अराजकता की स्थिति निर्मित हुई और सम्पूर्ण उत्तरभारत में आद्य शंकराचार्य द्वारा पुनर्स्थापित श्री विद्या की उपासना लगभग विस्मृत कर दी गई। तत्पश्चात् ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द जी ने श्री विद्या की उपासना के प्रति आस्थावान हिन्दुओं में पुनः चेतना और जागरण का संचार किया।

देश में ऐसी शक्तियां सक्रिय हैं, जो राजनैतिक उद्देश्य से हिन्दुओं को अपने पीछे एकजुट करने के लिए फर्जी शंकराचार्य बना और बनवा रही हैं। और अर्हताओं के धारक शंकराचार्य होने के कारण ही स्वामी स्वरूपानन्द जी फर्जी शंकराचार्यों का निग्रह करने का कार्य गम्भीरता से कर रहे हैं। यदि कलम की एक हरकत से स्वामी स्वरूपानन्द जी को ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य का पद का दायित्व निर्वहन करने से रोका जाता है तो इससे धार्मिक हिन्दुओं का तो कोई भला नहीं होगा, जाने-अनजाने फर्जी शंकराचार्य गढ़ने वाली शक्तियों का मनोरथ पूरा हो जायेगा और यह अंततः शांकर परम्परा पर गम्भीर आघात होगा।

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि शंकराचार्य परम्परा को कमजोर करने के लिए मान्य शंकराचार्यों को चुनौती देने की परिपाटी चल निकली है। अगर न्यायालय के आदेश के तहत चुने जाने वाले नये शंकराचार्य को भी वितण्डावादियों ने चुनौती दे दी तो विवाद का एक नया सिलसिला चल पड़ेगा और विवादों का यह क्रम अंतहीन हो जाएगा। इस सिलसिले पर विराम लगाने के लिए आवश्यक है कि स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी को ही ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में दायित्व निर्वहन करने दिया जाये।

न्यायालय ने यह माना है कि स्वामी स्वरूपानंद जी द्वारका पीठ के शंकराचार्य तो हैं ही

श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी द्वारका पीठ के शंकराचार्य हैं ही, यह न्यायालय ने भी माना है। इसका स्वाभाविक अर्थ यह है कि वे अर्हता के धारक सन्यासी हैं। यही नहीं, वे वर्तमान शंकराचार्यों में वरिष्ठतम हैं। भारत धर्म महामण्डल और काशी के विद्वान भी उनके प्रति श्रद्धा रखते हैं। इसलिए अगर न्यायालय के आदेश के परिपालन में ज्योतिष्पीठ के लिए नया शंकराचार्य चुनने की स्थिति आयी तो इस स्थिति में भी उनका मत सर्वाधिक महत्वपूर्ण होगा ही। कौन उनसे असहमति जतायेगा? तब क्या यही उचित नहीं होगा कि उन्हें ही ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में मान्यता देते हुए भविष्य में ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य का चयन उन्हीं के विवेक पर छोड़ा जाए और जब भी वे अपने उत्तराधिकारी के रूप में ज्योतिष्पीठ के लिए नया शंकराचार्य सुझायें उसका अभिषेक परम्परानुसार चारों शंकराचार्य और भारत धर्म महामण्डल तथा काशी विद्वत् परिषद के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में हो। हमारा मानना है कि यही हर दृष्टि से उचित होगा।

यह परिस्थिति बहुत संवेदनशील है। ऐसी परिस्थिति में न्यायपालिका की ओर पूरे हिन्दू धर्मावलम्बियों की निगाहें टिकी हैं। आज साधु-संतों के नाम पर धंधेबाज ठगों की बाढ़ आयी हुई है। कुकर्मी और अपकृत्य करने वाले अपराधी साधु-संतों का वेश धारण कर पूरे समाज में संतों की छवि धूमिल कर रहे हैं। ऐसे में अगर स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जैसे वास्तविक संतों को अमान्य किया जाएगा तो यह हिन्दूधर्म और समाज के लिए घातक होगा।

लोग जानते हैं और मानते हैं कि स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती की कोई रुचि मठ की गद्दी या सम्पत्ति में नहीं है। वे तो सब कुछ समाज को लौटा देते हैं या पीठ की उन्नति में लगा देते हैं। वे तो दोनों पीठें त्याग देने के लिए तत्पर रहने वाले महात्मा हैं। जहां तक ज्योतिष्पीठ का सवाल है, स्वामी स्वरूपानन्द ने तो उसका शंकराचार्य बनना केवल इस भावना से स्वीकार किया था कि वह उनकी गुरुपीठ है और वे उसका सुधार करके उसका उत्कर्ष मात्र चाहते हैं। अपात्र लोग ज्योतिष्पीठ की गुरुगद्दी का अपहरण करने के प्रयत्न कर रहे थे, इसलिए उनका निषेध करने का दायित्व निभाने उन्हें आगे आना पड़ा।

यहां हम यह कहना चाहेंगे कि आज जो एक विषम स्थिति निर्मित हुई उसका एक कारण यह है कि अदालतों में निर्णय समय पर नहीं हो पाता। अगर अदालतों के निर्णय जल्दी आते तो अपात्रों और अयोग्यों का निग्रह पहले ही हो जाता और विवाद की स्थिति नहीं बनी रहती। जरूरी है कि वर्तमान परिस्थिति का सम्यक विवेचन हिन्दू समाज की धार्मिक आवश्यकताओं को देखते हुए धार्मिक कानूनों के आधार पर हो। न्यायालय ने स्वयं लिखा है कि ठग शंकराचार्यों के पद नाम का दुरुपयोग करने का अपराध कर रहे हैं। ऐसे में वास्तविक संतों को सम्मान और न्याय शीघ्रातिशीघ्र मिलना जरूरी है। स्वामी स्वरूपानन्द जी तो सन्यासी और स्वतंत्रता सेनानी रहे हैं। सन्यासी के रूप में और ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में उनका कृतित्व सबके सामने है। तब उनकी गरिमा का सम्मान होना ही चाहिए।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय का आदेश एक ऐसा शून्य निर्मित कर सकता है जो घातक होगा

इस समूचे प्रसंग पर व्यापक बहस और विचार-विमर्श का आव्हान करते हुए हम आगाह करना चाहेंगे कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य की गद्दी को अचानक रिक्त घोषित किये जाने से ऐसी परिस्थितियों के उभर आने की आशंका बलवती है, जहां ज्योतिष्पीठ में एक शून्य निर्मित हो सकता है, जो हिन्दुओं के लिए तो हो ही सकता है, पूरे देश के लिए भी घातक हो सकता है। लोकहित का एक अत्यंत आवश्यक प्रश्न सामने है, जिसका उत्तर ढूंढ़ने के लिए तत्काल गहन विचार मंथन जरूरी है।

पहली बात तो यह है कि ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में जिन मान्य शंकराचार्यों ने स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी का अभिषेक 7 दिस. 1973 को किया था, स्वामी स्वरूपानन्द जी को वंचित किये जाने के निर्णय से उनका अपमान होगा। अगर स्वामी स्वरूपानन्द जी इस आदेश को चुनौती न दें तब भी यह महान सन्यासियों और प्रतिष्ठित मनीषियों के रूप में स्थापित तीनों शंकराचार्यों द्वारा उनमें व्यक्त किये गए विश्वास का अपमान होगा। इस स्थिति को कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

यह प्रश्न उठ चुका है कि जिन लोगों और संस्थाओं को नया शंकराचार्य तीन माह में चुनने का आदेश उच्च न्यायालय ने दिया है, वे इस अपील में पक्षकार ही नहीं थे। तो यह आदेश उन पर बंधनकारी कैसे होगा? वे अगर उस पर अमल ही न करें तो क्या स्थिति निर्मित होगी?

फिर यह सवाल भी है कि जिन स्वामी स्वरूपानन्द जी को ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में कार्य करने से रोका गया है वे एक अन्य पीठ-द्वारका शारदा पीठ के भी शंकराचार्य हैं। इस नाते अगर वे उच्च न्यायालय के आदेश के अनुरूप चयन प्रक्रिया में भाग न लें या किसी नये नाम पर अपनी सम्मति देने से इनकार कर दें तो ज्योतिष्पीठ के लिए नये शंकराचार्य का चयन कैसे होगा ?

दरअसल, वास्तविक सन्यासी तो लोभ-लालच से परे निस्पृह, वीतराग और परमहंस होते हैं। स्वामी स्वरूपानन्द जी इसी परम्परा के सन्यासी हैं। उनसे तो 1953 में ही ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य बनने का आग्रह स्वामी करपात्री जी सहित अन्य मनीषियों ने किया था। लेकिन स्वामी स्वरूपानन्द जी ने यह कहकर इनकार कर दिया था अभी वे अध्ययन और साधना कर रहे हैं। सन् 1973 में भी देशकाल की परिस्थितियों को महसूस करके ही शंकराचार्य बनना स्वीकार किया था।

अभी जब यह बात उठी कि उन्हें ही ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य रहना चाहिए तब उन्होंने पूछा कि क्या उनसे इस पद के लिए प्रत्याशी बनने की अपेक्षा की जा सकती है ? यह लाभ का पद नहीं है, जिसके लिए कोई आवेदन करके प्रत्याशी बने। यह तो मठाम्नाय में वर्णित लक्षणों और अर्हताओं वाले सन्यासी से आग्रह किया जाता है कि वह शंकराचार्य के पद को धारण करें। वस्तुतः स्वामी स्वरूपानन्द जी ने दो पीठों का शंकराचार्य होते हुए भी चिंतन, कार्य-व्यवहार और आचरण से सिद्ध किया कि शंकराचार्य का सिंहासन, छत्र, चंवर तक उसका नहीं होता। पादुका पर चढ़ने वाला धन और सामान भी उसका नहीं होता बल्कि सार्वजनिक उपयोग के लिए होता है और ट्रस्ट उसका प्रबंधन करता है।

स्वामी स्वरूपानन्द जी सदैव प्रतिपादित करते रहे हैं कि आदि शंकराचार्य ने चार पीठों की स्थापना इसलिए की थी कि अद्वैत का प्रचार-प्रसार निरन्तर होता रहे। अद्वैत सिद्धान्त श्रुति पर आधारित है। इसीलिए वे कहते हैं कि गुरु को श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए। अन्य मठों आदि में महन्त होते हैं जो मंत्र दीक्षा देते हैं लेकिन श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ तो ज्ञान देते हैं, जिसके लिए शास्त्र का ज्ञान होना जरूरी है। शंकराचार्य की पीठ सामान्य महंत या मठाधीश की पीठ नहीं है। यह आचार्य पीठ है, और आचार्य शास्त्र चुनकर ज्ञान देता है। अगर उसे ही शास्त्रों का ज्ञान नहीं होगा तो वह शास्त्र चुनेगा कैसे? इसीलिए योग्य सन्यासी ही शंकराचार्य पीठ के लिए चुना जाता है?

हमारा मानना है कि जिस राजा सुधन्वा के ताम्रपत्र का उल्लेख इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने किया है, उसके अनुसार तो चार आम्नाय पीठों में कोई स्थिति उत्पन्न होने पर द्वारका के शंकराचार्य (सुरेश्वराचार्य) का निर्णय अंतिम होता है। हम कहना चाहते हैं कि आज वह स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसमें द्वारका-शारदा पीठ के वर्तमान शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द जी की ओर हिन्दू समाज निर्णय के लिए देख रहा है, क्योंकि शंकराचार्य के विषय में अंतिम निर्णय मठाम्नाय-महानुशासनम् के प्रावधान के अन्तर्गत वे ही कर सकते हैं, कोई अन्य नहीं।

स्वामी स्वरूपानन्द जी का चयन और अभिषेक

ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में तीनों अन्य पीठों के शंकराचार्यों द्वारा की गई लिखित घोषणाओं का अपना महत्व है और यहां उनका शब्दशः प्रकाशन प्रासंगिक है।

देखें-तत्कालीन गोवर्धन पीठाधीश्वर (पुरी) के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ जी महाराज द्वारा जारी घोषणा पत्रः

'हम प्रसन्नतापूर्वक घोषणा करते हैं कि ब्रह्मलीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज के वरिष्ठतम एवं सुयोग्य शिष्य स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती जी महाराज आदि शंकराचार्य के "मठाम्नाय और महानुशासनम्" के अनुसार जगद्गुरु शंकराचार्य बनने की पूर्ण योग्यताएं रखते हैं। इसी कारण धर्म परिषद् ने भी वामन द्वादशी दिनांक 9.9.1973 को प्रस्ताव द्वारा इन्हीं स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज को इस पद हेतु योग्य निश्चित किया एवं ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने भी इसका अनुमोदन किया।

इसी कारण दिल्ली में आयोजित पट्टाभिषेक भी द्वारका-शारदा पीठाधीश्वर स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज तथा श्रृंगेरी पीठ प्रतिनिधि और श्रीमुख तथा हमारे सहयोग से सम्पन्न हुआ। अतः हम सभी स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती को ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में स्वीकार करते हैं तथा ज्योतिष्पीठ क्षेत्र की समस्त जनता को परामर्श देते हैं कि उन्हें परमपूज्य आचार्य मानकर इनके पावन उपदेशादि ग्रहण करें। गम्

हस्ताक्षर
(श्री निरंजन)
मुहर अनन्तश्री जगद्गुरु शंकराचार्य
श्री निरंजनदेव तीर्थ महाराज
गोवर्धनमठ, पुरी (उड़ीसा)

तत्कालीन द्वारका शारदा पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ द्वारा जारी घोषणा पत्र निम्नानुसार था:-

दिनांक 7/12/73

"हम प्रसन्नतापूर्वक सोत्साह यह घोषणा करते हैं कि ब्रह्मीभूत श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती महाराज के वरिष्ठतम एवं सुयोग्य शिष्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती महाराज, जिनमें आदि शंकराचार्य जी के महानुशासनम् और मठाम्नाय के अनुसार जगद्गुरु शंकराचार्य होने की पूर्ण योग्यताएं हैं। साथ ही काशी विद्वत् परिषद के प्रस्ताव दि. वामन द्वादशी ता. 9/9/1973, द्वितीय प्रस्ताव 12/9/1973 के अनुसार एवं ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम महाराज का सुझाव भी एतदर्थ संप्राप्त है। इनके पट्टाभिषेक के प्रस्ताव पर हम स्वयं इन्हें जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में स्वीकार करते हैं। आज से ज्योतिष्पीठाधीश्वर क्षेत्र की जनता इन्हें ही परम् पूज्य आचार्य के रूप में मानें और उपदेशादि ग्रहण करे।"

"इस निर्वाचन में हम और श्रृंगेरी पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य भी उत्साहपूर्वक सक्रिय भाग ले रहे हैं। एवं स्वीकृत किया है।"

हस्ताक्षर

श्री अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ स्वाभिमानः

(द्वारका-शारदा पीठ की मुहर)

स्वामी स्वरूपानन्द जी का चयन और अभिषेक

ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में तीनों अन्य पीठों के शंकराचार्यों द्वारा की गई लिखित घोषणाओं का अपना महत्व है और यहां उनका शब्दशः प्रकाशन प्रासंगिक है।

देखें-तत्कालीन गोवर्धन पीठाधीश्वर (पुरी) के जगद्गुरु शंकराचार्य श्री निरंजन देव तीर्थ जी महाराज द्वारा जारी घोषणा पत्र:

'हम प्रसन्नतापूर्वक घोषणा करते हैं कि ब्रह्मलीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज के वरिष्ठतम एवं सुयोग्य शिष्य स्वामी श्री स्वरूपानंद सरस्वती जी महाराज आदि शंकराचार्य के "मठाम्नाय और महानुशासनम्" के अनुसार जगद्गुरु शंकराचार्य बनने की पूर्ण योग्यताएं रखते हैं। इसी कारण धर्म परिषद् ने भी वामन द्वादशी दिनांक 9.9.1973 को प्रस्ताव द्वारा इन्हीं स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज को इस पद हेतु योग्य निश्चित किया एवं ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य जी ने भी इसका अनुमोदन किया।

इसी कारण दिल्ली में आयोजित पट्टाभिषेक भी द्वारका-शारदा पीठाधीश्वर स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ जी महाराज तथा श्रृंगेरी पीठ प्रतिनिधि और श्रीमुख तथा हमारे सहयोग से सम्पन्न हुआ। अतः हम सभी स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती को ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में स्वीकार करते हैं तथा ज्योतिष्पीठ क्षेत्र की समस्त जनता को परामर्श देते हैं कि उन्हें परमपूज्य आचार्य मानकर इनके पावन उपदेशादि ग्रहण करें। गम्

हस्ताक्षर
(श्री निरंजन)
मुहर अनन्तश्री जगद्गुरु शंकराचार्य
श्री निरंजनदेव तीर्थ महाराज
गोवर्धनमठ, पुरी (उड़ीसा)

तत्कालीन द्वारका शारदा पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ द्वारा जारी घोषणा पत्र निम्नानुसार था:-

दिनांक 7/12/73

"हम प्रसन्नतापूर्वक सोत्साह यह घोषणा करते हैं कि ब्रह्मीभूत श्री ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती महाराज के वरिष्ठतम एवं सुयोग्य शिष्य स्वामी श्री स्वरूपानन्द सरस्वती महाराज, जिनमें आदि शंकराचार्य जी के महानुशासनम् और मठाम्नाय के अनुसार जगद्गुरु शंकराचार्य होने की पूर्ण योग्यताएं हैं। साथ ही काशी विद्वत् परिषद के प्रस्ताव दि. वामन द्वादशी ता. 9/9/1973, द्वितीय प्रस्ताव 12/9/1973 के अनुसार एवं ब्रह्मलीन जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्री कृष्णबोधाश्रम महाराज का सुझाव भी एतदर्थ संप्राप्त है। इनके पट्टाभिषेक के प्रस्ताव पर हम स्वयं इन्हें जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में स्वीकार करते हैं। आज से ज्योतिष्पीठाधीश्वर क्षेत्र की जनता इन्हें ही परम् पूज्य आचार्य के रूप में मानें और उपदेशादि ग्रहण करे।"

"इस निर्वाचन में हम और श्रृंगेरी पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य भी उत्साहपूर्वक सक्रिय भाग ले रहे हैं। एवं स्वीकृत किया है।"

हस्ताक्षर

श्री अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ स्वाभिमानः

(द्वारका-शारदा पीठ की मुहर)

तत्कालीन श्रृंगेरीपीठाधीश्वर पूज्यपाद जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी अभिनव विद्यातीर्थजी द्वारा महाराजश्री के ज्योतिष्पीठ पर अभिषिक्त होने के अनन्तर जारी पत्र

श्री श्रृंगेरी जगद्गुरु महासंस्थानम्, शारदापीठम्

श्रृंगेरी –कडूर, मैसूर स्टेट

श्रृंगगिरिः दिनांक 23/8/ 1979

परमहंस श्री विभूषिताः श्री स्वरूपानन्द सरस्वती स्वामिनः उत्तराम्नायपीठे स्थित्वा सनातनं वैदिकं धर्मं प्रचारयन्तो वर्तन्ते। भगवत्पादोपपदर्शिते पथि संचरन्तः इमे शिष्यजनानां विशिष्टस्य आदरस्य पात्रतां प्रापयन्त। एतैः क्रियमाणं धर्मप्रचारकार्यं विज्ञाय वयं नितरां प्रासीदाम।...

श्री शारदाचन्द्रमौलीश्वरयोरनुकम्पया एते स्वामिनः दीर्घमायुरवाप्य सनातन धर्मप्रचारं अकंटकं विदध्यासुरित्याशास्महे।

इति नारायणस्मरणम्

हस्ताक्षर

विद्यातीर्थः

ज्योतिष्पीठ
शंकराचार्य
प्रसंग

अन्तर्कथा

अंतर्कथाः दर्पण में दिखता सच

जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी स्वरूपानंद सरस्वती जी से जयलोक की लम्बी बातचीत

ज्योतिष्पीठ/ज्योतिर्मठ के सम्बंध में उभर आयी स्थिति के विषय में 'जयलोक' ने स्वयं जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज से गहन चर्चा की। सारी अन्तर्कथा दर्पण में दिखते ही सच की तरह प्रत्यक्ष हो उठी। शंकराचार्य जी ने जयलोक से कहा कि, " हाईकोर्ट के फैसले की समरी पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि हाईकोर्ट यह मानकर चला है कि स्वामी शान्तानन्द का अभिषेक हो गया था इसलिए ज्योतिष्पीठ का पद रिक्त नहीं था, किन्तु यह गलत है। स्वामी शान्तानन्द का अभिषेक हुआ ही नहीं था। अपने गुरु स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के ब्रह्मलीन होने के बाद मुझे गुरुजी के सभी शिष्यों द्वारा अंतरिम समिति का अध्यक्ष बनाया गया था और और्ध्वदैहिक संस्कार सविधि सम्पन्न कराने का दायित्व दिया गया था। मैंने इसका सविधि पालन करवाया।

इससे पूर्व शान्तानन्द कुछ समय तक मध्यप्रदेश में भ्रमण करने के उपरांत मुझसे आज्ञा लेकर अनूपशहर गये थे। सभी को यह संभावना थी कि गुरुदेव की वसीयत में सुयोग्य शिष्यों का नाम होगा। जब मैं और्ध्वदैहिक संस्कार करवा रहा था उसी बीच किसी ने मुझे वसीयत दिखलाई जिसमें चार नाम थे। पहला नाम शान्तानन्द उर्फ रामजी त्रिपाठी का था। यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।

किंतु मैंने तार दे कर शान्तानन्द को बुलवाया। मुझे पता था वह अनूपशहर में थे। यदि पीठ में बैठे रहने की मेरी कोई मंशा होती तो मैं यह

भी ना करता। जब शान्तानन्द आ गये तो कुछ काशी के पण्डितों ने उनसे संस्कृत में प्रश्न किया जिसे वह समझ ही नहीं पाये तो उत्तर क्या देते। यह बात विद्वानों में फैल गई।

काशी में और्ध्वदैहिक संस्कार के बाद मैंने वसन्तपूजा और विद्वत्सत्कार के लिए विद्वानों को आमंत्रित किया। उस समय काशी विद्वत्परिषद के अध्यक्ष सत्यनारायण कविराज थे जो राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के चिकित्सक भी थे वे एवं गुरुजी के वरिष्ठ शिष्य स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती (स्वामी करपात्री) जी सहित तत्कालीन विद्वत् समाज एवं गुरुजी के शिष्यगण थे। जब मुझसे पूछा गया कि गुरुजी के स्थान पर अब कौन होने वाला है ? तो मैंने उनसे कहा कि मेरे सामने जो वसीयत आई है उसको मैं सुनाता हूं फिर आप निर्णय करें कि कौन होगा ?

शंकराचार्य जी ने कहा – मैंने आद्योपांत वह वसीयत पढ़कर सुनाई। उसमें लिखा था- मेरे बाद नंबर एक पर शान्तानन्द, नंबर दो पर द्वारकाप्रसाद त्रिपाठी, नंबर तीन पर विष्णुदेवानन्द एवं नंबर चार पर स्वामी परमानन्द होंगे। ये नाम वैकल्पिक नहीं थे वसीयत में यह स्पष्ट लिखा था कि जब तक द्वारकाप्रसाद जीवित हैं और शंकराचार्य पद सम्हालना चाहते हैं तो किसी अन्य को शंकराचार्य बनाने का अधिकार शान्तानन्द को नहीं होगा। इसी तरह जब तक विष्णुदेवानन्द जीवित हों द्वारका प्रसाद शास्त्री किसी अन्य को शंकराचार्य नहीं बना सकते और विष्णुदेवानन्द जब तक परमानन्द जीवित हैं किसी अन्य को शंकराचार्य नहीं बना सकते थे। यह वसीयत सुनकर काशीविद्वत् परिषद के अध्यक्ष सत्यनारायण कविराज यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि जो संस्कृत से अनभिज्ञ हो उसे शंकराचार्य नहीं बनाया जा सकता। इस पर कृष्णगोपाल

चौधरी ने स्वामी करपात्री जी से प्रश्न किया कि पण्डित लोग यदि गुरुजी की वसीयत नहीं मानते तो हम शिष्य लोगों का क्या कर्त्तव्य होगा? तब स्वामी करपात्री जी ने कहा गुरु आदि शंकराचार्य हैं। उनका महानुशासन ही बड़ी वसीयत है। इसका उल्लंघन नहीं हो सकता। इससे अनुकूलता होना आवश्यक है। महानुशासनम् में श्लोक है–

शुचिर्जितेन्द्रियो वेदवेदाङ्गादिविशारदः ।
योगज्ञः सर्वशास्त्राणां स मदास्थानमाप्नुयात् ॥५७॥
उक्तलक्षणसम्पन्नः स्याच्चेन्मत्पीठभाग् भवेत्।
अन्यथारूढ़पीठोऽपि निग्रहार्हो मनीषिणाम् ॥५८॥

पवित्र, जितेन्द्रिय वेदांगादि विशारद ही मेरे पीठ का अधिकारी हो, अगर नहीं तो विद्वानों का कर्त्तव्य है कि अनधिकारी का वे निग्रह करें। इस तरह जब सर्वसम्मति से विद्वानों ने शान्तानन्द का निग्रह कर दिया तो हम कुछ नहीं कर सकते थे किसी को भी बनाने, ना बनाने का अधिकार हमें नहीं था। इसके बाद गुरुजी के सभी सन्यासी शिष्य शान्तानन्द के विरुद्ध हो गये।

मठ की चाबी शान्तानन्द को नहीं दी गई थी वह गुरुजी के एक शिष्य गोविन्दानन्द के पास थी। शान्तानन्द ताला तोड़कर ब्रह्मनिवास में जाकर बैठ गए, जबकि ऐसा करने पर अन्य लोग चोर-चोर कहकर उसका विरोध करते रहे।

शंकराचार्य का अभिषेक विद्वानों की सम्मति के बाद राजोपचार के साथ मस्तक पर तीर्थजल डालकर किया जाता है। जब विद्वानों ने एवं वरिष्ठ शिष्य स्वामी करपात्री जी ने शान्तानन्द का निग्रह कर दिया तो सर्वसम्मति से कृष्णबोधश्रम जी का अभिषेक विधि विधान से ज्ञानवापी में

किया गया। इस अभिषेक में वसीयत में उल्लिखित द्वारका प्रसाद, विष्णुदेवानन्द एवं परमानन्द तक सम्मिलित थे। विद्वानों ने कृष्णबोधाश्रम जी के चयनपूर्व इन तीनों के नाम पर भी विचार किया था। जिनमें द्वारका प्रसाद शास्त्री उस समय सन्यासी नहीं थे, विष्णुदेवानन्द संस्कृतज्ञ नहीं थे और स्वामी परमानन्द के दाहिने पैर का अंगूठा कटा हुआ था। वे अंगभंग थे अतः अयोग्य मान लिए गए थे।

इस तरह विरोध के चलते भी शान्तानन्द का स्वयं को शंकराचार्य मानना और सम्पत्ति पर अधिकार का प्रयास जब चलने लगा तो हमने इसका विरोध किया था। अदालत ने सक्सेशन सर्टिफिकेट शान्तानन्द को दे दिया लेकिन इस पर विचार नहीं किया गया कि क्या ब्रह्मानन्द जी को इस तरह के अयोग्य की नियुक्ति करने का अधिकार था भी या नहीं? निर्णय अधूरा ही रहा। इसी बीच स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी आ गए जो 20 वर्षों तक शंकराचार्य पद का निर्वाह करते रहे। इसी बीच काशी के विद्वानों ने दफा 92 के आधार पर शान्तानन्द पर काशी में मुकदमा चलाया जिसमें शान्तानन्द को अयोग्य माना गया किंतु इस केस में कृष्णबोधाश्रम जी पार्टी नहीं थे। अतः उन्हें इसका लाभ नहीं मिल पाया।

प्रयाग के माघ मेले के अवसर पर शान्तानन्द ने कोर्ट में एक परिवाद दाखिल किया कि कृष्णबोधाश्रम जी स्वयं को शंकराचार्य ना कहें एवं स्वामी करपात्री एवं सन्त शरण वेदान्ती उन्हें इस तरह की मान्यता न दें। इसके विरुद्ध कृष्णबोधाश्रम जी ने अपील की किंतु अपील के दौरान वे ही ब्रह्मलीन हो गये। उनके बाद कुछ समय तक स्वामी करपात्री जी एवं सन्त शरण वेदान्ती जी इस मामले की पैरवी करते रहे। इसी बीच हमारा

(स्वामी स्वरूपानन्द सस्वती) अभिषेक विधि विधान से दिल्ली में किया गया जिसमें द्वारका के शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ जी, गोवर्धनपीठ के निरंजनदेव जी, काशी विद्वत्परिषद, भारतधर्म मण्डल, स्वामी करपात्री जी एवं श्रृंगेरी के शंकराचार्य के प्रतिनिधि ने भाग लिया था। जब हमारा अभिषेक हो गया तब कोर्ट में कृष्णबोधाश्रम जी के पक्ष में पैरवी से स्वामी करपात्री जी का ध्यान हट गया। स्मरण रहे स्वामी करपात्री जी सामान्य संन्यासी नहीं थे। अपितु, सनातनधर्मी उन्हें धर्म सम्राट कहते थे। सम्पूर्ण भारत में उनकी ख्याति थी और वे मूर्धन्य विद्वान एवं अपराजेय शास्त्रार्थी थे। बिना इन सभी बातों का विचार किये हम पर निर्णय थोप दिया गया है।

शंकराचार्य जी ने 'जयलोक' से आगे कहा कि अपने अभिषेक के बाद हमने स्वामी शान्तानन्द, द्वारका प्रसाद त्रिपाठी एवं परमानन्द को पार्टी बनाते हुए दीवानी मामला कोर्ट फीस देकर सिवनी में प्रारम्भ किया जिसे शान्तानन्द इलाहाबाद ट्रांसफर करवा कर इसे लम्बित करवाते रहे। इस बीच श्रृंगेरी में चतुष्पीठ सम्मेलन हुआ जिसमें श्रृंगेरी के अभिनव विद्यातीर्थ, द्वारका शारदा पीठ के अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ, गोवर्धनपीठ के निरंजनदेव एवं ज्योतिष्पीठ से हम (स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती) चतुष्पीठ सम्मेलन में सम्मिलित हुए। हम सभी ने हस्ताक्षर करके प्रस्ताव पारित किया जिसे हमने कोर्ट में पेश किया है। परन्तु इस बीच शान्तानन्द ने पदत्याग करते हुए विष्णुदेवानन्द को शंकराचार्य नियुक्त कर दिया जो कि अनधिकार चेष्टा थी। वसीयत का लाभ वही ले सकता है जो उसका अक्षरशः पालन करे। विष्णुदेवानन्द की नियुक्ति के पूर्व द्वारका प्रसाद शास्त्री ने स्वामी हरिहरानन्द जी से संन्यास लेकर शान्तानन्द को सूचित

किया और कहा कि आप वसीयत के अनुसार मुझे अपने स्थान पर घोषित करें। इसका उल्लंघन शान्तानन्द ने किया और कानूनन वे वसीयत से मिलने वाले लाभ वे वंचित हो गये। इन सभी बातों पर हाईकोर्ट ने ध्यान दिया है या नहीं यह अभी हमें ज्ञात नहीं है। उक्त तथ्यों को हमने सिविल कोर्ट में रखा था।

उधर इलाहाबाद में हमारे द्वारा दाखिल मामला कोर्ट में चल ही रहा था कि विष्णुदेवानन्द की मृत्यु हो गई। उनके द्वारा लिखित एक वसीयत पेश की गई जो हस्ताक्षर विशेषज्ञों द्वारा कूटरचित साबित हुई। ऐसी स्थिति में हमने अदालत में आवेदन दिया कि वासुदेवानन्द को स्वयं को शंकराचार्य कहने एवं छत्र, चंवर धारण करने से रोका जाये। जिस पर सिविल जज ने रोक लगाते हुए हमें शंकराचार्य घोषित किया। जब इस निर्णय के विरुद्ध डिस्ट्रिक्ट कोर्ट में गये तब वहां से उक्त निर्णय की पुष्टि हुई पुनः हाईकोर्ट एवं सुप्रीम कोर्ट गये वहां भी इन्हें खारिज करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दिया कि उक्त अपील की सुनवाई करते हुए छह महीने में इसका निस्तारण किया जाये कि वासुदेवानन्द योग्य है अथवा नहीं। इस मामले को भी वासुदेवानन्द ने दस वर्ष लंबा कर दिया। अदालत की अवमानना करते हुए वे स्वयं को शंकराचार्य कहते रहे। हमने जब इसका विरोध किया तो अदालत ने इसकी जांच करने कमिश्नर नियुक्त किया। जांच के मध्य इन्होंने कमिश्नर की बुरी तरह पिटाई करवाई जिस पर इनके ऊपर एक फौजदारी केस भी चल रहा है।

इन्होंने जब अदालत की निषेधाज्ञा का पालन ही नहीं किया तो इन्हें अदालत जाने का अधिकार ही नहीं था। सदा ही इन्होंने अदालत की अवज्ञा की और अभी तक ज्योतिर्मठ में शंकराचार्य का साइन

बोर्ड लगाकर बैठे रहे। हमें इस बात का दुख है कि जो व्यक्ति सदा ही अदालत की अवमानना करता रहा उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हुई। उसे केवल अयोग्य कहकर छोड़ दिया गया है।

अब यह कहा जा रहा है कि तीन महीने में किसी अन्य का ज्योतिष्पीठ पर अभिषेक कर दिया जाय। प्रश्न यह है कि अब तक हमारे द्वारा जो कार्य हुए हैं उनका क्या होगा? वे वैध माने जाएंगे या अवैध? अगर अदालत इतना विलंब ना करती तो अब तक तो नया शंकराचार्य भी आ गया होता। अब अगर तीन महीने में नये शंकराचार्य की नियुक्ति हो जाये तब भी क्या वासुदेवानन्द अपने को शंकराचार्य कहना बंद करेंगे?

हाईकोर्ट ने कहा है कि भारतधर्म महामण्डल, काशी विद्वत् परिषद और तीन शंकराचार्य मिलकर तीन महीने में नये शंकराचार्य का चयन करेंगे। यह सुझाव हमने भी दिया था कि जिस तरह स्वामी ब्रह्मानन्द जी का अभिषेक हुआ है उसी तरह हमारा भी हुआ और आगे भी यही क्रम रहेगा। तो, कैसे स्वामी ब्रह्मानन्द जी की ऐसी गुप्त वसीयत, जिसका पता न काशी विद्वत् परिषद को था, न भारत धर्ममण्डल को था तो हाईकोर्ट ने इसे कैसे मान लिया?

हाईकोर्ट का महानुशासन को आधार बनाकर यह कहना है कि चार पीठों पर चार व्यक्ति होंगे तो उन्हें शान्तानन्द और उन पर दण्डविधान करना चाहिए था यह उन्होंने सरकार पर छोड़ दिया है, सरकारें बदलती रहती हैं। इन्हीं के समर्थन से नकली लोग पैदा होते हैं। ऐसे लोगों पर सरकार अंकुश लगाना चाहेगी तो वे फिर कोर्ट में आ जाएंगे कि हम भी शंकराचार्य हैं तो क्या शंकराचार्य जीवन भर कोर्ट में उलझे रहें? इस पर विद्वानों को ध्यान देना चाहिए।

जब तक कि यह सुनिश्चित नहीं हो जाता कि इसके बाद वासुदेवानन्द स्वयं को शंकराचार्य नहीं कहेंगे तब तक कौन नया योग्य संन्यासी इस विवाद में स्वयं को डालना चाहेगा ? और कौन उसे खोजने जायेगा ? जब अदालतें ही छह महीने की जगह सालों में निर्णय करती हों। निर्णय सुरक्षित करके महीनों लटका दिया जाता हो तो ऐसी स्थिति में हमें कहां से तीन महीने में योग्य संन्यासी मिल जावेगा ? कौन तीन शंकराचार्यों, काशी विद्वत् परिषद से अनुरोध करने जाएगा ? इस तरह कोर्ट ने ज्योतिष्पीठ को व्यावहारिक दृष्टि से रिक्त ही कर दिया है।

शंकराचार्य जी ने कहा– महानुशासन में लिखा है योग्य व्यक्ति के रहते मठ को उच्छिन्न नहीं करना चाहिए जैसे राज्य को एक क्षण के लिए भी राजाविहीन नहीं किया जा सकता वैसे ही शंकराचार्य गद्दी को भी शंकराचार्य विहीन नहीं किया जाता। चैनल कह रहे हैं कि हाईकोर्ट ने दोनों को खारिज कर कर दिया है। अगर यह सत्य नहीं है तो चैनलों को क्यों नहीं रोका जा रहा है ? शंकराचार्य से ऊपर कोई नहीं होने से वे अपना त्यागपत्र भी किसी को नहीं सौंप सकते। हमने परंपरा से प्राप्त एवं सिविल कोर्ट से प्राप्त ज्योतिष्पीठ शंकराचार्य के पद से साधिकार जो व्यवस्थाएं दी हैं अब हमारे निरस्त होने से वे भी अमान्य होंगी और हिन्दूधर्म की महान क्षति का जिम्मेदार कोर्ट ही होगा।

हाईकोर्ट को केवल हमारी इस अर्जी पर विचार करना था कि वासुदेवानन्द योग्य है या नहीं ? जब उनको अयोग्य घोषित कर ही दिया तो उसके आगे लंबा फैसला लिखने की क्या जरूरत थी ? अब अगर हम इसके विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट भी जाते हैं तो इसका फैसला कब होगा पता नहीं। जो चारपीठ वाली बात हाईकोर्ट कह रहा है वह रोचक भले हो पर

आज्ञापक नहीं है, हम तो अपने उत्तराधिकारी की घोषणा करने वाले थे और उसका समर्थन भी करते किंतु वासुदेवानन्द का विवाद तब भी खत्म ना होता। उसका निग्रह तो हो ही नहीं रहा। जो हमारा शिष्य होगा उस पर कृष्णबोधाश्रम जी के उत्तराधिकार का जो हम पर आरोप लगाया गया है, वह उस पर भी क्या नहीं लगेगा ?

जयलोक द्वारा जिज्ञासा व्यक्त किये जाने पर शंकराचार्य जी ने कहा कि फैसले में शान्तानन्द की अयोग्यता का कोई प्रमाण नहीं दिया गया है इस संबंध में हमारा कथन है कि जो हमने सिवनी में वाद दायर किया था जिसका शान्तानन्द ने इलाहाबाद ट्रांसफर करा लिया था उसमें उसकी अयोग्यता संबंधी सभी तथ्य थे। किन्तु हाईकोर्ट के प्रसंग में मुख्य विचारणीय विषय वासुदेवानन्द की अयोग्यता ही थी जिसको सिद्ध करने में हम सफल रहे हैं। शान्तानन्द की अयोग्यता का सबसे बड़ा प्रमाण तो स्वामी ब्रह्मानन्द जी की तथाकथित वसीयत ही थी। उसमें अपना उत्तराधिकारी चुनने का अधिकार शान्तानन्द को नहीं दिया था और यही बात द्वारकेशानन्द और विष्णुदेवानन्द पर भी लागू होती है। इसमें विचारणीय विषय यह भी है कि राजा एक बार ही अपने उत्तराधिकारी का चयन कर सकता है उसके पश्चात जो उसका उत्तराधिकारी है सारे अधिकार उसके हो जाते हैं। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने यदि शान्तानन्द को अपना पूर्णतः उत्तराधिकारी बना ही दिया था तो उसके पश्चात् चयन के वे अधिकारी नहीं थे।

हाईकोर्ट के न्यायाधीश सुधीर अग्रवाल ने अपने निर्णय में लिखा है कि शान्तानन्द की अयोग्यता का कोई प्रमाण नहीं है मिलता। यह उचित नहीं। यदि वे योग्य होते तो किसी अन्य का अभिषेक क्यों किया जाता ?

यह ध्यान रखना आवश्यक है कि शान्तानन्द का निग्रह करने वाले एवं स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी का अभिषेक करने वाले विद्वज्जनों का नेतृत्व स्वयं स्वामी हरिहरानन्द सरस्वती (करपात्री जी) कर रहे थे और इसके साथ-साथ तत्कालीन द्वारका शारदा पीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ स्वयं पधारे थे और उनका अभिषेक किया था।

जिस राजा सुधन्वा की मठाम्नाय महानुशासन में चर्चा है जिनके अनुरोध पर शंकराचार्यों को राजोपचार छत्र चंवरादि का विधान किया गया है उनका एक ताम्रलेख है जिसकी प्राचीन प्रतिलिपि के आधार हमने उसका प्रकाशन करवाया है। उसमें यह लिखा है कि इन चारों पीठों में पहला पश्चिम्नाय है जो शारदामठ कहलाता है। भद्रकाली यहां की देवी हैं और आचार्य विश्वरूप अर्थात् सुरेश्वराचार्य हैं। किसी महत्वपूर्ण विषय में जबकि विभिन्न आचार्यों के मत में भिन्नता हो या विवाद की स्थिति हो तब द्वारका शारदापीठ के सुरेश्वराचार्य ही निर्णायक माने जाएंगे। सुरेश्वराचार्य का अर्थ द्वारका शारदापीठ की परंपरा के अद्यावधि समस्त आचार्य माने जाएंगे।

द्वारका के तत्कालीन शंकराचार्य जी ने अपने करकमलों से कृष्णबोधाश्रम जी का अभिषेक करके यह निर्णय दिया कि कृष्णबोधाश्रम जी ही ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य हैं अन्य कोई नहीं। उनका साथ कृष्णबोधाश्रम जी को मिला शान्तानन्द को नहीं। इसके पश्चात् 1973 में जब उनका देहावसान हुआ तो हमारा (स्वामी स्वरूपानन्द) का अभिषेक द्वारका के जगद्गुरु शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ जी महाराज गोवर्धन पुरीपीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजनदेव जी महाराज श्रृंगेरी के शंकराचार्य स्वामी अभिनव विद्यातीर्थ जी महाराज के प्रतिनिधि

चल्ला लक्ष्मण शास्त्री, पूज्यपाद धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज, के करकमलों से भारतधर्ममण्डल, काशी विद्वतपरिषद की उपस्थिति में हुआ। शंकराचार्य स्वागत समारोह में उपराष्ट्रपति गोपाल स्वरूप पाठक, तत्कालीन कानून मंत्री श्री नीतिराज चौधरी आये। एवं विभिन्न सामाजिक संगठनों के पदाधिकारी सम्मिलित थे। देश के विभिन्न भागों में जगह-जगह बड़े-बड़े जुलूस के द्वारा शोभायात्रा निकाली गईं।

श्रृंगेरी में जब प्रथम चतुष्पीठ सम्मेलन 1979 में आयोजित किया गया तब द्वारका के तत्कालीन शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ, श्रृंगेरी के स्वामी अभिनव विद्यातीर्थ, गोवर्धनपुरी पीठ के स्वामी निरंजनदेव एवं ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में हम सम्मिलित हुए एवं तदाशय का हस्ताक्षर भी पत्रक में लिया गया था। यह भी शान्तानन्द की अयोग्यता का प्रमाण है कि उन्हें वहां नहीं बुलाया गया। इसके पश्चात दो चतुष्पीठ सम्मेलन और भी आयोजित हुए श्रृंगेरी एवं बैंगलुरु में वहां हम ज्योतिष्पीठ एवं द्वारका शारदापीठ के शंकराचार्य के रूप में सम्मिलित हुए एवं इसी रूप में हमारा हस्ताक्षर भी हुआ।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज की वसीयत है। वसीयत में जो नामनी हैं उन पर मतभेद है पर उनकी वसीयत में मतभेद नहीं है क्योंकि इसके पहले भी उनकी जो वसीयत थी उसकी इबारत भी यही थी जो बाद वाली की थी। वर्तमान वसीयत में जहां इन चारों का नाम है वहां शान्तानन्द को उत्तराधिकारी चयन करने का अधिकार ना देना भी अयोग्यता का प्रमाण है। इसके अतिरिक्त शान्तानन्द का पद से त्यागपत्र देना भी उनकी अयोग्यता दर्शाता है। यह नियम है कि जिसका अभिषेक होता है वह जीवनभर के लिए होता है।

फिर 1980 में स्वामी शान्तानन्द ने त्यागपत्र दे दिया। इसके बहुत कारण हो सकते हैं जो संभावित हैं वे हैं-

1. तत्कालीन सनातनी समाज के शीर्ष सभी शंकराचार्य, धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी, विद्वत् समाज के प्रबल विरोध के कारण स्वामी शान्तानन्द स्वयं को बहिष्कृत समझने लगे थे, अपने अंतरद्वन्द्व को सहन न कर पाना त्यागपत्र का कारण हो।
2. उन्होंने विदेश यात्रा कर ली थी जिसका विवरण वासुदेवानन्द की मेरे गुरुदेव नामक पुस्तक में दिया हुआ है अतः त्यागपत्र देने में ही अपना हित समझ रहे हों।
3. वसीयत में जो तीन नाम दिये गये थे उन लोगों का दबाव रहा होगा कि अब हमें भी अवसर मिलना चाहिए।

शान्तानन्द के त्यागपत्र देने के बाद महेश योगी ने शान्तानन्द से अनुरोध किया कि वे अब विदेश यात्रा कर सकते हैं क्योंकि उन्होंने त्यागपत्र दे दिया है। महेश योगी को भी यह पता था कि शंकराचार्य विदेश यात्रा नहीं कर सकते अन्यथा यह अनुरोध वह पहले भी कर सकते थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी की वसीयत में उत्तराधिकारी शंकराचार्यों के कर्त्तव्यों का जो उल्लेख किया गया है वह एवं भारतधर्म महामण्डल के न्यासपत्र का उत्तरार्ध अक्षरशः निम्नलिखित है-

वसीयत के अनुसार उत्तराधिकारी शंकराचार्यों के कर्त्तव्यः

ज्योतिष्पीठाधिपति शंकराचार्यों का कर्त्तव्य होगा कि श्रुति, स्मृति, पुराणप्रतिपादित सनातन धर्म का प्रचार, वर्णाश्रम धर्म की रक्षा तथा जनसमाज में धार्मिक प्रवृत्ति जागृत करते हुए प्राणीमात्र में सद्भावना

उत्पन्न करने तथा विश्व में लोककल्याणकारी कामना से समस्त देश में तथा विशेषत: उत्तरभारत में भ्रमण करते हुए अपने उपदेश, आदेश तथा आदर्श द्वारा जन समाज का कल्याण करते हुए पीठ की महान मर्यादा की रक्षा करते रहें। मेरा आदेश है कि यदि किसी पीठाधीश्वर आचार्य के व्यवहार इस लेख में वर्णित आदेशों वे निर्देश के विरुद्ध तथा पीठ की महान मर्यादा के प्रतिकूल हो जावें तो भारतवर्षीय वर्णाश्रम धर्मानुयायी, धार्मिक संस्थाओं तथा भारत के वर्णाश्रमी सनातनधर्म विद्वज्जनों का कर्त्तव्य होगा कि वे ऐसे आचार्य का प्रतिप्रार्थना आदि अनुरोध के द्वारा उन्हें अपने मर्यादापूर्ण स्वरूप में स्थित कराने के लिए प्रयत्न करें। यदि संयोगवश किसी कारण से वे आचार्य इस पर भी दुराग्रह करें और अपने व्यवहारों में वांछित परिवर्तन ना करें तो सनातनी धर्म की मर्यादा रक्षण के पुण्य-लक्ष्य से उपरोक्त संस्थाएं एवं विद्वज्जन एकत्रित होकर उन्हें आचार्यपद से पदच्युत करें और रिक्त स्थान पर उपरोक्त आदेशानुसार पूर्ववर्णित प्रतिबन्धों के अधीन आचार्यपद से पदच्युत करें और रिक्तस्थान पर उपरोक्त आदेशानुसार पूर्ववर्णित प्रतिबन्धों के अधीन ज्योतिष्पीठ शिष्य-परम्परा में से सुयोग्य दण्डी को पीठ पर अभिषिक्त करके आचार्य परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखें।

भारत धर्ममहामण्डल के न्यासपत्र का उत्तरार्ध

जो पूर्वकथित जमीन गवर्नमेण्ट की मदद से संग्रह की गई थी और जिस पर यह पीठ विद्यमान है वह सब जमीन जिनके दस्तावेज आदि इस न्यासपत्र में सम्मिलित हैं वे सब पूज्यपाद श्री 108 शंकराचार्य स्वामी श्री ब्रह्मानन्द सरस्वती जी महाराज को भक्तिपूर्वक अर्पण किये जाते हैं। श्री 108 महाराज वर्तमान गवर्नमेण्ट के नियमानुसार इसके ट्रस्टी होंगे और

उनके शिष्य परम्परारूप से वे तथा उनके उत्तराधिकारी श्री ज्योतिर्मठ के शंकराचार्य कहलाएंगे। इस तिथि की संगृहीत सब जमीन कभी बेची नहीं जाएगी। श्री भगवान ऐसा नहीं करें। यदि कभी श्री ज्योतिर्मठ में शिष्य परम्परा में आचार्य गद्दी उच्छिन्न हो तो श्री भारतधर्ममहामण्डल को अधिकार रहेगा कि इसी अधिकार से उस रिक्त स्थान की पूर्त्ति करे। पूज्यपाद श्री आदि शंकराचार्य प्रभु की यह अन्तिम लीला भूमि और सनातनधर्मियों को पूज्यनीय तीर्थ बना रहेगा।

इसके आलोक में यह सिद्ध हुआ कि ज्योतिर्मठ एक ट्रस्ट है और ट्रस्ट की वसीयत नहीं हो सकती। जो वसीयत उपलब्ध हुई थी उसमें किसका नाम है इसका किसी को पता नहीं था। पता होने पर विरोध प्रारम्भ हो गया तो शान्तानन्द को चाहिए था जैसा कि माननीय उच्च न्यायालय ने कहा है कि भारतधर्ममहामण्डल और तीन शंकराचार्य ही अभिषेक कर सकते हैं तो शान्तानन्द को इसका अनुमोदन करवाना चाहिए था जो उन्होंने नहीं किया इसलिए वे कभी भी शंकराचार्य स्वीकृत ही नहीं किये गए।

शंकराचार्य जी ने बताया कि एक विचारणीय विषय यह भी है कि विपक्ष के लोग यह मानकर चलते हैं कि स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने ही ज्योतिष्पीठ का उद्धार किया है तो यह कहना मूर्खता ही है। भारतधर्ममण्डल 1905 से ही ज्योतिष्पीठ के लिए योग्य आचार्य की खोज में लगा हुआ था और अगर स्वामी ब्रह्मानन्द स्वयं ही इस ज्योतिष्पीठ पर बैठ जाते तो वे भी आजके स्वयंभू जैसे ही अमान्य माने जाते। वस्तुस्थिति यह है कि भारतधर्ममहामण्डल ने भूमि, मंदिर का निर्माण करके इनको ट्रस्टी बनाया था। अतः ट्रस्ट का नाम ज्योतिष्पीठ है एवं उसका ट्रस्टी पदेन ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य है।

ट्रस्टी शब्द आते ही मठाम्नाय के आचार्य के नियम लागू हो जाते हैं। वर्तमान शंकराचार्य न तो कोई नया संविधान बना सकते हैं और ना ही कोई संशोधन की ही कर सकते हैं। जैसी कि व्यवहारिक परम्परा है कि एक राजा को राज्य सौंप देने के बाद देने वाले के सभी अधिकार पूर्णरूप से समाप्त हो जाते हैं। यह राज्य परम्परा अभी भी मान्य है। इसी तरह जिस वरिष्ठ शिष्य का अभिषेक होता है उसकी को वह सभी अधिकार प्राप्त हो जाते हैं। उसको उत्तराधिकारी चयन करने का अधिकार तो प्रमुख रूप से प्राप्त होता है। यह अधिकार शान्तानन्द, विष्णुदेवानन्द आदि को ही नहीं दिया गया। शान्तानन्द को गद्दी सौंपकर अन्य लोगों को अनिवार्य शंकराचार्य बनाने का आदेश देना परंपरा, व्यवहार और गरिमा का हनन है। जिस तरह लड़ी लगाकर लोगों को आरक्षित कर दिया गया तो वे क्यों वेदवेदांग आदि योग्यता का सम्पादन करेंगे ? कोई एक ही शंकराचार्य हो सकता है। इन बातों का अभी तक किसी अदालत ने विचार नहीं किया है। इसमें प्रतिपक्षी सहयोग करते रहे हैं।

इसी स्थिति में यह प्रतीत होता है कि जिस उद्देश्य से उन्होंने चारों शंकराचार्यों को मुकद्दमेबाजी से बचाने की बात की थी उसके समाप्त होने की संभावना ही नष्ट हो जाती है। वर्तमान शंकराचार्य के जो अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं उनकी वैधता पर प्रश्न चिन्ह लग जाता है यह घोर अन्याय है।

हाईकोर्ट के निर्णय के अनुसार सन् 1989 में वासुदेवानन्द का पद पर प्रतिष्ठापन वैध मानते हुए बाद में वासुदेवानन्द को अयोग्य मानते हुए खारिज किया गया है। तो इस 28 साल की अवधि में पीठ पर कौन था ? जबकि इसी अवधि में चार पीठों का चतुष्पीठ सम्मेलन हुआ और उसमें

ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी सम्मिलित हो रहे थे। इसी अवधि में उन्हें ज्योतिष्पीठ की ओर से नेपाल भी बुलाया गया। इसी अवधि में बद्रीनाथ-केदारनाथ मंदिर समिति की ओर से पारित प्रस्ताव जिसमें स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी से ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य की हैसियत से निवेदन किया गया कि आप यदि शंकराचार्य जी की समाधि जो कि केदारनाथ में अवस्थित है उसका जीर्णोद्धार करें। तो क्या यह सभी कार्य कोर्ट खारिज कर सकता है ?

हाईकोर्ट के द्वारा वर्तमान ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य जी को अमान्य कर दिया गया। उनको अप्रमाणित करने से सनातन हिन्दूधर्म की जो क्षति हुई उसे कह सकना सम्भव नहीं । देश की उच्च न्यायव्यवस्था का यह स्वरूप बहुत भयावह है। सर्वप्रथम वर्तमान ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य जी के कार्यकाल में 45 वर्ष के विशाल अंतराल में जो उल्लेखनीय कार्य हुए हैं।

उनका ब्यौरा निम्न है।

1. सन् 1973 में जब स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी का देहावसान हुआ तो (स्वामी स्वरूपानन्द जी) का अभिषेक द्वारका के जगद्गुरु शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ जी महाराज गोवर्धनपुरीपीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजनदेव जी महाराज श्रृंगेरी के शंकराचार्य स्वामी अभिनव विद्यातीर्थ जी महाराज के प्रतिनिधि चल्ला लक्ष्मण शास्त्री, पूज्यपाद धर्मसम्राट स्वामी करपात्री महाराज के करकमलों से भारतधर्ममहामण्डल, काशी विद्वत परिषद की उपस्थिति में हुआ। शंकराचार्य स्वागत समारोह में उपराष्ट्रपति गोपाल स्वरूप पाठक, तत्कालीन कानून मंत्री चौधरी नीतिराज सिंह एवं

विभिन्न सामाजिक संगठनों के पदाधिकारी सम्मिलित थे। देश के विभिन्न भागों में जगह-जगह बड़े-बड़े जुलूस के द्वारा शोभायात्रा निकाली गईं।

क्या यह सभी अब उच्च न्यायालय द्वारा अमान्य है?

2. श्रृंगेरी में जब प्रथम चतुष्पीठ सम्मेलन सन् 1979 में आयोजित किया गया तब द्वारका के तत्कालीन शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानन्द तीर्थ, श्रृंगेरी के स्वामी अभिनव विद्यातीर्थ, गोवर्धनपुरी पीठ के स्वामी निरंजनदेव एवं ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में सम्मिलित हुए एवं तदाशय का हस्ताक्षर भी पत्रक में लिया गया था। यह सभी अब आप खारिज कर रहे हैं।

3. इसके पश्चात दो चतुष्पीठ सम्मेलन और भी आयोजित हुए श्रृंगेरी एवं बैंगलुरु में वहां ज्योतिष्पीठ एवं द्वारका शारदापीठ के शंकराचार्य के रूप में सम्मिलित हुए एवं इसी रूप में हस्ताक्षर भी हुआ।

4. ज्योतिष्पीठ के तत्वावधान में दिये जाने वाले पुरस्कार जो विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिष्ठित लोगों को दिये जाते हैं वे सभी अमान्य हो जावेंगे।

5. विभिन्न पदवियां जो विद्वानों को वितरित की गई हैं एवं छात्रों को जो उपाधियां दी गई हैं वे अमान्य होंगी।

6. इस निर्णय से भारतीय न्याय प्रणाली का मखौल अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उड़ाया जायेगा। विदेशों से आने वाले अनेकों भक्तों ने ज्योतिष्पीठ एवं द्वारका शारदापीठ के शंकराचार्य के रूप में दीक्षा ग्रहण की है। नेपाल नरेश ने अपने युवराज का यज्ञोपवीत संस्कार ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य जी की उपस्थिति में उनके मार्गदर्शन में करवाया एवं

विशाल धर्मसभा में उनको प्रमुखतम स्थान देते हुए इस महासमारोह को नेपाल की मीडिया से प्रचारित करवाया था। उस समय नेपाल हिन्दू राज्य था। वहां का राजा स्वतंत्र था उसका सिक्का वहां चलता था। साथ ही आदि शंकराचार्य जी का नेपाल से सम्बंध था वे वहां गये थे। नेपाल आज भले ही विदेश है पर हिन्दूराष्ट्र है।

7. श्रीरामजन्मभूमि बाबरी मस्जिद वाले परिवाद में एक पार्टी होने से अब इस पर भी प्रश्नचिन्ह होगा।

8. इस सदी का सबसे बड़ा पाखण्ड जिसमें हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम साईं की पूजा करवाई जाने लगी। बड़े-बड़े साईं-मंदिर बन गए एवं प्राचीन हिन्दू-मंदिरों में साईं की मूर्ति प्रवेश करा दी गई उस साईं को हिन्दू समाज से उखाड़ फेंकने का जो महाभियान वर्तमान ज्योतिष्पीठाधीश्वर द्वारा चलाया जा रहा है उसमें 50 प्रतिशत सफलता भी मिली है वह कुण्ठित हो जाएगा।

9. कवर्धा में समस्त अखाड़ों एवं प्रमुख सनातनी धर्माचार्यों साधु महात्माओं का ऐतिहासिक धर्मसंसद के माध्यम से साईं पूजा के विरुद्ध सभी का एकमत कराया गया। क्या वह व्यर्थ हो जायेगा ?

10. एक नियम है कि किसी जगह कोई बिना प्रतिरोध के 10 वर्ष रह जाता है तो फिर वहां से उसे हटाना गैरकानूनी है भले ही हटाने वाले का मालिकाना हक ही क्यों न हो। तो वर्तमान शंकराचार्यको आप 43 वर्ष बाद अमान्य कर रहे हैं वह भी बिना किसी विधिक अपील या अनुतोष के, और बिना उचित कारण बताये ? 43 वर्ष के ज्योतिष्पीठ के कार्यकाल में आज तक वर्तमान शंकराचार्य (स्वामी स्वरूपानन्द जी) पर न कभी कोई भी विधिक-आपत्ति की गई न ही उनकी

योग्यता को लेकर तो उच्च न्यायालय को उनकी अयोग्यता क्यों नजर आने लगी ?

11. एक तरह से इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने वर्तमान ज्योतिष्पीठाधीश्वर के साथ-साथ सभी शंकराचार्यों एवं समस्त सनातनी शीर्ष धर्माचार्यों को अमान्य कर दिया है क्योंकि इन्हीं लोगों ने वर्तमान आचार्य को पदवी प्रदान की है और पीढ़ी दर पीढ़ी मानते चले आ रहे हैं।

यह एक भ्रांति है कि चार शंकराचार्य मिलकर निर्णय करें तभी वह सर्वमान्य हो सकता है। यह बात मठाम्नाय महानुशासनम् के विरुद्ध है क्योंकि ये चार पीठ चार धर्मराजधानियां बनाई गई हैं जो जहां का धर्मसम्राट है वह वहां सर्वोच्च है। उसे अपने क्षेत्र में व्यवस्था देने के लिए अन्य की अनुमति आवश्यक नहीं है।

पिछले कुछ वर्षों की बात है जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ के रथ में कौन-कौन बैठ सकता है ? यह प्रश्न जब हाईकोर्ट में गया तब वहां से निर्णय हुआ कि गोवर्धनपुरी पीठ का आदेश मान्य होगा। इसी तरह प्रत्येक क्षेत्र की स्थिति है। शंकराचार्य वस्तुतः एक ही है चार नहीं। आदि शंकराचार्य ने कहा है जो मेरे पीठ पर बैठे वह मेरा स्वरूप ही समझा जाए। ऐसी स्थिति में संख्या से न महत्व घटता है और ना ही बढ़ता है। यदि तीन शंकराचार्य मिलकर किसी अयोग्य को चौथा शंकराचार्य बना दें तो वह महानुशासन के द्वारा मान्य नहीं होगा।

हमें जिन तीन शंकराचार्यों ने अभिषेकपूर्वक शंकराचार्य बनाया उन्होंने अपने घोषणा पत्र में यह लिखा कि स्वामी स्वरूपानन्द जी मठाम्नाय में वर्णित योग्यता के धारक हैं एवं स्वामी ब्रह्मानन्द जी के वरिष्ठ शिष्य हैं, हम सोत्साह इनको शंकराचर्य मानते हैं। इनके क्षेत्र की

जनता भी इनको इसी रूप में जाने माने। इसमें उनकी संख्या का प्रमाण नहीं है अपितु घोषणा में निहित योग्यता है।

न्यायाधीश श्री सुधीर अग्रवाल अपने निर्णय में एक ओर तो महानुशासन को अनिवार्य मानते हैं जबकि प्रतिपक्षी कहता है महानुशासन नीति निर्देशात्मक है आज्ञापक नहीं तो इसका खंडन करते हुए कोर्ट ने इसे आज्ञापक माना। और आगे कहा 1941 की प्रक्रिया को वैध माना जाये और आगामी शंकराचार्य का चयन किया जाये।

कल्पना कीजिए अगर वह चयन महानुशासन के विपरीत हो तो क्या यह नियम मान लिया जाएगा? जैसे महानुशासन के विरुद्ध वसीयत में अयोग्य लोगों के चयन को हाईकोर्ट ने नियम बना दिया है। चार पीठों की व्यवस्था में ऐसा कहीं भी नियम नहीं है। जो प्रक्रिया है वह केवल योग्यता केन्द्रित है। इसी तरह 1941 को ही सर्वदा माना जाये। यह भी एक नया नियम है अदालत बना रही है। ध्यान रहे महानुशासन संशोधन का विषय नहीं अक्षरशः अनुपालन के लिए है।

महानुशासन में स्पष्ट उल्लेख है कि- '**एक एवाभिषेच्यः स्यादन्ते लक्षणसम्मतः।**' यहां अभिषेकपूर्वक शंकराचार्य पद पर प्रतिष्ठापन की बात कही गई है। जैसे वर्तमान निर्वाचन प्रणाली में भी नियम है कि भिन्न पदों के लिए जनता या विधायकों , सांसदों द्वारा चयनित व्यक्ति को समारोहपूर्वक शपथ दिलाई जाती है जिसका लोक साक्षी होता है। इसी तरह वसीयत में नामोल्लेख के बाद भी चयनित शंकराचार्य का अभिषेक समारोहपूर्वक होता है इस तरह का कोई भी अभिषेक शान्तानन्द, विष्णुदेवानन्द या वासुदेवानन्द का नहीं हुआ है इसका कोई भी प्रमाण कभी नहीं दिया गया। और वस्तुतः तो इसका प्रमाण लोक ही होता है।

हाईकोर्ट ने ज्योतिष्पीठाधीश्वर के मामले में शान्तानन्द वाली लाइन को योग्य मानते हुए वासुदेवानन्द तक को पीठ पर प्रतिष्ठापित माना है जिसका यह अर्थ हुआ कि आगे जो भी नई नियुक्ति होगी वह इसी लाइन के आगे होगी। अब आगे पीठ के इतिहास में कृष्णबोधाश्रम जी और हम (स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती) कहीं नहीं रहेंगे और अब जो भी शंकराचार्य होगा वह वासुदेवानन्द का परवर्ती होगा। तो, यह वासुदेवानन्द की अयोग्यता नहीं, योग्यता ही कोर्ट प्रमाणित कर रहा है। लोक में जिस तरह परंपरा के विरुद्ध जब शादी की सहमति बनानी हो तो लड़का-लड़की मात्र वयस्क और आपसी सहमति से कोर्ट मैरिज कर लेते हैं इसी तरह मठाम्नाय महानुशासन रूपी परंपरा से हटकर शान्तानन्द आदि ने कोर्ट से अपने स्थापन का प्रयास किया, जिसे कोर्ट भले सहमति दे रहा हो किंतु मठाम्नाय महानुशासनम् रूपी परम्परा की तो कोर्ट ने हत्या कर दी है।

वासुदेवानन्द ने अपने पक्ष की पुष्टि में जो कहा है उसमें यह है कि मेरे गुरुदेव शान्तानन्द हैं। तो, वे शान्तानन्द जो कि पदत्याग कर चुके हैं और विदेश यात्रा भी कर चुके हैं और स्वयं वासुदेवानन्द भी विदेशयात्रा कर चुके तो संन्यास लेने वाला और संन्यास देने वाला दोनों ही विदेशयात्री हैं। अतः दोनों ही अपात्र हैं। इसके बाद दूसरी बात यह है कि संन्यास लेने के बाद पूर्वनाम, गोत्रादि का त्यागकर नया नाम गुरु धारण कराते हैं तो इनका पूर्वनाम सोमनाथ द्विवेदी लुप्त हो गया था वे वासुदेवानन्द हो चुके थे किंतु वे गुप्तरूप से पूर्वनाम सोमनाथ द्विवेदी का ही व्यवहार करते हुए एक सरकारी अनुदान प्राप्त विद्यालय में स्वयं को अध्यापन करता हुआ दिखाकर वेतन प्राप्त करते रहे। जबकि एक संन्यासी न तो वेतन लेता है और ना ही अपने पूर्वनाम का उपयोग करता है।

वासुदेवानन्द स्वयं को विष्णुदेवानन्द के स्थान पर शंकराचार्य होने का दावा करते हैं विष्णुदेवानन्द के नाम पर जो वसीयत अदालत में आई उसमें लिखा है कि मेरे स्थान पर स्वामी वासुदेवानन्द का अभिषेक मैं ना कर सकूं तो मेरे मरने के बाद मेरे अग्रज स्वामी शान्तानन्द को यह अधिकार होगा कि वे वासुदेवानन्द या किसी और को शंकराचार्य के रूप में अभिषिक्त कर दें। प्रश्न यह है कि कोई अधिकारी क्या अपने अधिकार का स्थानान्तरण कर सकता है ? कोई भी अधिकारी अपने अधिकार का स्वयं की उपयोग कर सकता है जबकि वह अधिकार व्यक्तिगत ना होकर ट्रस्ट से संबंधित हो।

द्वितीय जज श्री ठक्कर ने वासुदेवानन्द के संन्यास को स्वीकार कर लिया पर यह स्पष्ट नहीं किया कि इन्होंने कब संन्यास लिया है ? वह कहते हैं कि वे गुरुपरंपरा से संन्यासी हैं तो यह संन्यास किस गुरु परंपरा से था ? यदि शंकराचार्य परंपरा से था तो वह परंपरा शान्तानन्द के इस्तीफा देते ही समाप्त हो गई थी। और, यदि केवल संन्यास की ही बात है तो इस पद पर विष्णुदेवानन्द के संन्यासी शिष्यों का अधिकार था ना कि शान्तानन्द के शिष्यों का। अतः इन्हें भी बाहरी व्यक्ति ही मानना पड़ेगा। ध्यान रहे उस समय शान्तानन्द केवल शंकराचार्य पद से इस्तीफा देकर ही निवृत्त नहीं हो गये थे अपितु उन्होंने विदेश यात्रा भी कर ली थी विदेश यात्रा से दण्डदूषित हो जाता है तो वासुदेवानन्द का उसी व्यक्ति से पुनः दण्ड लेकर अपने भी विदेश यात्रा करना दण्डी सन्यासी की परंपरा के सर्वथा ही विरुद्ध है।

माननीय जज सुधीर अग्रवाल ने इनके सन्यास पर प्रश्नचिन्ह लगाया। श्री ठक्कर ने उनको गुरु परंपरा का सन्यासी माना है पर दोनों ने

उनको अयोग्य माना है। उस अयोग्यता का करण क्या होता है ? यह स्पष्ट नहीं किया गया है जबकि ट्रायलकोर्ट ने उनकी अयोग्यता का कारण छद्मनाम से नौकरी करते हुए एक आपराधिक कृत्य माना, इनके शरीर में कुष्ठ होने से संन्यासी के रूप में अयोग्य माना, इन्होंने विदेश यात्रा की थी यह भी ट्रायल कोर्ट ने माना है इन सबका संज्ञान लिए बिना कैसे हाईकोर्ट ने यह तय कर दिया कि जिस दिन फैसला हुआ उसी दिन से पीठ रिक्त है ?

यदि वे अयोग्य थे तो 1989 से ही होने चाहिए थे और तभी से पीठ रिक्त दिखलानी थी ?। वहां से उनको निरंतर मानते हुए निर्णय देने तक कौन सी नई बात उनके सामने आई जिससे उन्होंने 22 सितम्बर 2017 से ही गद्दी को खाली बताया। ? क्या अपील के अदालत में लंबित होने से अपराधी वादी को ही माना जाएगा ? इस बीच में ज्योतिष्पीठ का संचालन फिर कौन कर रहा था ? यदि जिस तारीख से अयोग्य वासुदेवानन्द स्वयं को शंकराचार्य कहते हैं तभी से वह यदि निरस्त होते हैं तो उस समय विष्णुदेवानन्द का देहावसान हो चुका था और शान्तानन्द इस्तीफा दे चुके थे ऐसी स्थिति में इसकी पूर्ति किसने की यह स्पष्ट नहीं है।

वासुदेवानन्द इसी तारीख से गद्दी में नहीं है तो न्यायाधीश सुधीर अग्रवाल जी का कहना कि इस फैसले के पश्चात तीन महीने के भीतर काशीविद्वत्परिषद, तीन शंकराचार्य और भारतधर्ममहामण्डल ये सभी किसी नये का अभिषेक करें तो क्या ये सभी इस मुकद्दमें में पार्टी थे ? उन्होंने तीन शंकराचार्य कहा तो इसमें एक तो हम स्वयं ही हैं। और हम स्वयं ही अगर प्रार्थी होते हैं तो तीन शंकराचार्य तो अभिषेक कर ही नहीं पायेंगे। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक था कि वासुदेवानन्द की अपील

पूर्णत: खारिज की जानी थी उसके किसी भी अंश को विचारणीय नहीं माना जा सकता था। अत: उचित है किट्रायल कोर्ट का ही निर्णय मान्य हो इस निर्णय को खारिज किया जाये।

स्मरण रहे विष्णुदेवानन्द की जो वसीयत कोर्ट में पेश हुई थी उस वसीयत में हस्ताक्षर विशेषज्ञ द्वारा उनका हस्ताक्षर जाली सिद्ध हुआ था। इस पर जस्टिस ने ध्यान क्यों नहीं दिया ? यदि श्री ठक्कर उनको सन्यासी मानते हैं तो इस जाली वसीयत और उनके आपराधिक कृत्य के लिए कुछ क्यों नहीं कहा गया है ? कृष्णबोधाश्रम जी के विरुद्ध जो फैसला इलाहाबाद के जज ने दिया था उसमें शान्तानन्द को शंकराचार्य मानते हुए कृष्णबोधाश्रम जी का निग्रह माघमेला इलाहाबाद में आने के लिए किया गया था। इसमें उन्होंने जो कारण बताया है वह पठनीय है, उन्होंने यह कहा कि-शिष्य की योग्यता का निर्धारण गुरु ही कर सकता है शान्तानन्द, ब्रह्मानन्द जी के शिष्य हैं और गुरु ने इनका नाम वसीयत में लिखकर इनकी योग्यता प्रमाणित कर दी है। यह कहा जाता है कि शान्तानन्द का निषेध करके कृष्णबोधाश्रम जी का अभिषेक किया गया पर कृष्णाबोधाश्रम जी ब्रह्मानन्द जी के शिष्य नहीं थे बाहरी थे।

लेकिन एक ब्रिटिश लेखक द्वारा लिखी गई शान्तानन्द की बॉयोग्राफी से यह पता चलता है कि शान्तानन्द का जन्म सन् 16 जुलाई 1913 को बस्ती जिले के अछती ग्राम में हुआ था। वे अपने पिता लालबिहारी त्रिपाठी की तीसरी सन्तान थे और इनका नाम रामजी त्रिपाठी था। ये स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती की बहन के पुत्र थे। स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती रिश्ते में इनके सगे मामा होते थे। गीताप्रेस गोरखपुर में इन्होंने 14 वर्ष बुक वाइन्डर का कार्य किया। ये स्वामी पूर्णानन्द तीर्थ (उडिया बाबा) के

यहां विद्यार्थी थे। यह जानकर अब प्रश्न उठता है कि वसीयत का आधार योग्यता भी नहीं थी। वसीयत में भी शान्तानन्द की योग्यता का उल्लेख नहीं किया गया है और ये शिष्य ना होकर ब्रह्मानन्द जी के भांजे थे। अत: दोनों ही हालात में वसीयत मान्य नहीं हो सकती क्योंकि यदि उन्होंने वसीयत की है तो उसका आधार शिष्य ना होकर पारिवारिक रिश्ता ही है। यह निश्चित होता देखकर कि वसीयत का आधार योग्यता नहीं वरन् पूर्वाश्रम का संबंध ही है और इस आधार पर यह वसीयत अवैध ही है। शंकराचार्य का पद योग्यता केन्द्रित पद है संपत्ति का नहीं यह संपत्ति सन्यासी होकर नहीं दी जा सकती।

ऐसी स्थिति में अब अगर वसीयत किया है तो वह रद्द है और नहीं किया है तो शून्य है।

शंकराचार्य जी ने 'जयलोक' को बताया कि शंकराचार्य शब्द में शंकर के बाद आचार्य शब्द आया है। आचार्य का अर्थ है– जो शास्त्रों का चयन करके उन्हें व्यवहार में स्वयं लायें एवं यही शिक्षा अपने शिष्यों को भी दें। अब जो स्वयं ही अपढ़ है वह यह कार्य कैसे कर सकता है? उस समय स्वामी ब्रह्मानन्द जी के वरिष्ठ शिष्य विद्यमान थे उनमें स्वामी करपात्री जी और हम (स्वामी स्वरूपानन्द) उनके वरिष्ठ शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी के ब्रह्मलीन होने पर उनके समस्त शिष्यों ने उनके और्ध्वदैहिक संस्कार के लिए गठित अंतरिम समिति का अध्यक्ष हमें ही बनाया एवं उनका समस्त संस्कार हमने ही किया तो यह उस समय हमारी वरिष्ठता और समस्त शिष्यों के द्वारा स्वीकार्यता को दर्शाता है। शिष्यों में भी वरिष्ठताक्रम चलता है तो क्या कारण है कि वसीयत में इसकी उपेक्षा की गई?

यदि यही परंपरा मान ली गई तो शंकराचार्य पद आरक्षित मान लिया जाएगा। वसीयत में जिन तीन लोगों का क्रम से नाम था वे भी शान्तानन्द से वरिष्ठ शिष्य थे। अतः शान्तानन्द की नियुक्ति से वे भी अप्रसन्न थे और हमारे अभिषेक में स्वामी ब्रह्मानन्द जी के सभी शिष्य, काशी के विद्वान, भारतधर्म महामण्डल एवं सभी शंकराचार्य सम्मिलित थे। तो, अब कौन शेष था जिसने शान्तानन्द का अभिषेक किया था? यह निश्चित ही निरस्त होने योग्य है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि द्वारका के तत्कालीन शंकराचार्य अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ ने भी कृष्णबोधाश्रम जी का अभिषेक किया था।

यह परंपरा है जिसकी पुष्टि राजा सुधन्वा का ताम्रपत्र करता है कि किसी मत भिन्नता वाले प्रकरण में द्वारका के शंकराचार्य ही सर्वनिर्णायक माने जाएंगे। अतः इस दृष्टि से भी यह अभिषेक निर्णायक सिद्ध होता है। अतः माघमेला के सम्बंध में दिया गया फैसला अवैध था यदि वह अवैट हो गया था तो उसकी वैधता पर विचार किया जाना था। उसके अवैट होने का दण्ड उन चार शंकराचार्यों को नहीं दिया जाना चाहिए।

शंकराचार्य जी ने 'जयलोक' को इसी क्रम में बताया कि ब्रह्मानन्द जी की वसीयत में जो चार नाम थे उनको प्रतिवादी बनाकर एक सिविल सूट कोर्ट फीस देकर सिवनी म.प्र. में हमने चलाया था जिसको शान्तानन्द ने इलाहाबाद ट्रांस्फर करा लिया था और उसको वे लंबित करते गए इसी बीच जब चारों का निधन हो गया और एक अजनबी व्यक्ति जो वसीयत के बाहर था जिसका नाम वासुदेवानन्द था उसने स्वयं को घोषित करना चाहा तो हमने उसकी घोषणा के विरुद्ध अपना प्रतिवाद प्रस्तुत किया

लेकिन अदालत की छुट्टियों के कारण सुनवाई नहीं हो सकी। इस बीच उसने स्वयं को शंकराचार्य ज्योतिष्पीठ घोषित कर लिया। तब हमने मामला अवैट न हो जाए इसलिए उसको प्रतिवादी बनाकर अदालत से निषिद्ध करने का अनुरोध किया। जिसको दो अदालतों ने माना एवं वासुदेवानन्द को सर्वथा निषेधित किया इस निर्णय के खिलाफ जब ये हाईकोर्ट गए तो हाईकोर्ट ने कहा यह निषेध प्रतिवादी को सुने बिना किया गया है अतः इकतरफा है तब हम सुप्रीम कोर्ट गए तो हाईकोर्ट ने इनके निषेध को बरकरार रखते हुए कहा कि ट्रायल कोर्ट इस मामले की सुनवाई छह महीने करते हुए योग्यता का निर्धारण करे। किंतु जब इन्हें सुना गया तो उन्होंने अपना पक्ष रखा जो ट्रायल कोर्ट में लिखित पेश है।

सुप्रीम कोर्ट की अवहेलना करते हुए हाईकोर्ट ने शान्तानन्द के द्वारा जो निषेध पहले से चला आ रहा था उसे पुष्ट कर दिया। सिविल कोर्ट ने 5 मई 2015 को हमारे पक्ष में निम्न निर्णय दिया था- 'वादी स्वामी स्वरूपानन्द का वाद सव्यय आज्ञप्ति किया जाता है तथा प्रतिवादी स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती को सदैव के लिए निषेधित किया जाता है कि वह अपने को जगद्गुरु शंकराचार्य बद्रिकाश्रम हिमालय घोषित ना करें व शंकराचार्य कार्यालय का प्रतीक चिन्ह दण्ड, छत्र, चंवर, सिंहासन को धारण न करें तथा शंकराचार्य के रूप में कोई कार्य ना करें।'

जब ट्रायलकोर्ट ने हमारे वाद को स्वीकार करते हुए इनको अयोग्य ठहराते हुए निषेधित किया तो उक्त निर्णय की अनदेखी कर उस अयोग्य व्यक्ति की अर्जी पर पुनः विचार क्यों किया गया? और पहले स्वयं हाईकोर्ट ने ही इस निर्णय पर स्टे ऑर्डर देने से मना कर दिया था अब पुनः उसकी पुष्टि करते हुए उसको लाभ पहुंचाने

के लिए हमारे अध्यासन के संबंध में विचार करने का प्रसंग ही कहां था? यह अपील हमारी नहीं थी।

ब्रह्मानन्द जी की वसीयत में शान्तानन्द का प्रथम नाम है इसका क्या कारण है ? यदि शिष्य होना है तो शिष्यों में वरिष्ठता देखी जाती है। और योग्यता की दृष्टि से भी शून्य है अगर वरिष्ठ शिष्य क्रम से देखा जाये और वसीयत में जिनका नाम नहीं है उनको छोड़ भी दिया जाये तो शेष तीन शान्तानन्द से वरिष्ठ थे। द्वारका प्रसाद बहुत वर्षों से उनकी सेवा कर रहे थे। विष्णुदेवानन्द और परमानन्द उनसे पूर्व संन्यासी हो चुके थे। इन सबको नीचे करते हुये शान्तानन्द का नाम सबसे ऊपर रखना न तो योग्यता है, ना ही वरिष्ठता है। बस भांजा होना ही योग्यता। पूर्वाश्रम से संबंध सन्यासी को ही नहीं रखना चाहिये। शंकराचार्य तो बहुत विशेष हैं। हम तो यह मानकर चल रहे हैं कि वह वसीयत अवैध है।

और अंत में...

अव्यवहारिक, अराजकताकारी और असमंजसकारी है इलाहाबाद उच्च न्यायालय का अदूरदर्शितापूर्ण फैसला

समग्रता में विचार करें तो ज्योतिष्पीठ के विषय में इलाहाबाद उच्च न्यायालय का फैसला न केवल अव्यवहारिक है, बल्कि, उससे शांकर परम्परा में असमंजस और अराजकता छा जाने का भय है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बात पर विचार ही नहीं किया गया कि आदेश का क्रियान्वयन मठाम्नाय महानुशासनम् की दृष्टि से व्यवहारिक और सम्भव भी है या नहीं ?

भारत धर्म महामण्डल का अधिकार

स्वयं न्यायालय ने माना है कि अगर ज्योतिष्पीठ पर शंकराचार्य परम्परा में अवरोध आ जाये तो इस पीठ पर 165 वर्ष बाद नया शंकराचार्य नियुक्त करने वाले भारत धर्ममहामण्डल को ही पुनः नया शंकराचार्य नियुक्त करने का अधिकार होगा। तो फिर, 1953 में विवाद उपस्थित होने पर स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी की नियुक्ति को न्यायालय ने वैध क्यों नहीं माना, जबकि स्वामी शान्तानन्द को अयोग्य करार देकर उनका 'निग्रह' करने और, स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी को ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य नियुक्त करने वालों में भारत धर्म महामण्डल भी अग्रणी सहभागी था ?

जहां तक गुरु-शिष्य परम्परा की दृष्टि से स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी को स्वामी ब्रह्मानन्द जी का शिष्य न माने जाने का प्रश्न है, चूंकि उनका अभिषेक भारत धर्ममहामण्डल आदि ने स्वामी ब्रह्मानन्द जी के वरिष्ठतम शिष्य स्वामी करपात्री जी द्वारा ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य बनने से इनकार कर दिये जाने के बाद स्वतंत्र रूप से उसी पद्धति से किया था जिससे 1941 में स्वामी ब्रह्मानन्द जी का किया गया था इसलिए गुरु-शिष्य परम्परा का तर्क उन पर लागू नहीं किया जा सकता। और, स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी का योगपट्ट आश्रम होने के बारे में भी कोई प्रश्न नहीं उठ सकता।

दूसरे, यह पीठ मठाम्नाय महानुशासनम् के अन्तर्गत स्थापित एक पीठ है। इसलिए उसका संचालन मठाम्नाय महानुशासन के अन्तर्गत ही हो सकता है जिसे स्वयं इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कानून माना है। इसलिए इसे स्वतंत्र पीठ ही माना जाएगा, सामान्य मौरूसी मठ नहीं। स्पष्टतः इसमें उत्तराधिकार के सम्बंध में मठाम्नाय महानुशासनम् के निर्देश लागू होंगे, सामान्य मौरूसी मठ के नियम नहीं।

एक प्रश्न यह भी है कि इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने स्वामी शान्तानन्द की अयोग्यता को इसलिए नहीं माना कि उसके प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। तब उचित यह होता कि वह प्रमाण पेश करने के आदेश देता। लेकिन ऐसा भी नहीं किया गया। वस्तुतः प्रस्तुत प्रकरण में यह प्रश्न विचारणीय ही नहीं था। अन्यथा उचित अवसर पर उचित रीति से प्रमाण अवश्य प्रस्तुत कर दिये जाते।

दो प्रकरण: दोनों अबेट लेकिन एक को उसका लाभ, दूसरे को नहीं

एक ही प्रकरण में सम्मिलित एक समान दो मामलों पर उच्चन्यायालय के एक और निर्णय पर प्रश्न खड़ा हो रहा है। स्वामी शान्तानन्द ने स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी के विरुद्ध एक वाद दायर किया था, जिसमें निर्णय स्वामी शान्तानन्द के पक्ष में हुआ था। लेकिन स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी ने फैसले के विरुद्ध अपील दायर की किन्तु अपील के विचाराधीन रहते ही स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी ब्रह्मलीन हो गये। यह अपील अबेट हो गई और इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने इस अबेटमेण्ट का लाभ स्वामी शान्तानन्द को दिया।

लेकिन, बिल्कुल ठीक इसी तरह स्वामी स्वरूपानन्द जी ने सिवनी (मध्यप्रदेश) में स्वामी शान्तानन्द और वसीयत में उनके नाम के नीचे दर्ज तीनों लोगों के विरुद्ध वाद प्रस्तुत किया था। जिसे स्वामी शान्तानन्द ने इलाहाबाद स्थानान्तरित करा लिया था। इस प्रकरण के विचाराधीन रहते चारों प्रतिवादियों का देहान्त हो गया। प्रक्रिया के अनुसार यह प्रकरण भी अबेट हो गया। लेकिन इस अबेटमेण्ट का लाभ स्वामी स्वरूपानन्द जी को न दिया जाना ऐसी विसंगति है जो आशंकाओं और प्रश्नों को आमंत्रित करती है।

क्या कालबाधित नहीं है 44 साल बाद स्वामी स्वरूपानन्दजी के अधिष्ठापन पर विचार करना

यह बात पहले ही उठ ही चुकी है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत अपील में ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द जी के अधिष्ठापन का मुद्दा प्रस्तुत ही नहीं हुआ था, तब उस पर अचानक अनपेक्षित रूप से निर्णय क्यों दिया गया ?

इस विषय में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या 44 वर्ष पूर्व घटित अधिष्ठापन की घटना विधि की दृष्टि से कालातीत नहीं हो चुकी है ? और, क्या अब उस पर अचानक विचार करके इलाहाबाद उच्चन्यायालय द्वारा निर्णय दिया जाना कालबाधित नहीं है ?

फिर यह बात ध्यान देने योग्य है कि अभिषेकपूर्वक अधिष्ठापित शंकराचार्य को मठाम्नाय- महानुशासनम् के अन्तर्गत हटाने के लिए दो शर्तें हैं- पहली यह, कि वह अयोग्य हो और दूसरी यह कि उसने कोई अपराध किया हो। ये दोनों ही शर्तें स्वामी स्वरूपानन्द जी के साथ नहीं पायी जातीं। उनमें 44 वर्षों में न तो कभी कोई अयोग्यता किसी को दिखी न उन्होंने कभी कोई अपराध ही किया। तो फिर, मठाम्नाय महानुशासनम् के निर्देशों के अनुरूप वे ससम्मानविधिपूर्वक अधिष्ठापित शंकराचार्य हैं और भूतकालिक प्रभाव से उनके अधिष्ठापन को अमान्य किये जाने या अवैध ठहराये जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए इलाहाबाद उच्चन्यायालय के आदेश की सक्षम अधिकारी से समीक्षा कराया जाना जरूरी है।

जहां तक स्वामी शान्तानन्द के शंकराचार्य पद के दावे को केवल वसीयत में उनका नाम होने से मान्य किये जाने और उनको केवल इस आधार पर 'योग्य' मान लिये जाने का प्रश्न है कि उनको योग्य मानकर ही उनका नाम वसीयत में लिखा गया होगा-आधारहीन है और तर्क से पुष्ट नहीं है। वस्तुतः इसे तथ्य-अर्थात् 'प्रत्यक्षे प्रमाणम् किम्' के सिद्धान्त के प्रकाश में देखा जाना जरूरी है। जब स्वामी ब्रह्मानन्द जी की वसीयत में नाम आने के पश्चात् स्वामी शान्तानन्द विद्वानों के सामने आये तो विद्वानों ने पाया कि स्वामी शान्तानन्द को संस्कृत भाषा का ज्ञान ही नहीं है। यह देखकर विद्वानों ने, यहां तक कि काशी विद्वत् परिषद के तत्कालीन अध्यक्ष ने सबके सामने खड़े होकर कह दिया था कि वे संस्कृत न जानने वाले व्यक्ति को शंकराचार्य नहीं मान सकते। यह निग्रह किया जाना नहीं था तो और क्या था? इसके प्रत्यक्षदर्शी स्वामी ब्रह्मानन्द जी के और्ध्व दैहिक कर्म कराने के लिए गठित अन्तरिम समिति के अध्यक्ष स्वामी स्वरूपानन्द जी स्वयं थे। जिन्होंने विद्वानों के सम्मुख स्वामी ब्रह्मानन्द जी की वसीयत पढ़कर सुनाई थी। यह प्रत्यक्ष प्रमाण है और प्रत्यक्ष के मुकाबिले अनुमान को वरीयता नहीं मिल सकती।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने लिखा है कि स्वामी शान्तानन्द का निग्रह वैधानिक दृष्टि से नहीं हुआ। तो प्रश्न उठता है कि उसे इस बात का ज्ञान कहां से हुआ? क्या स्वयं शान्तानन्द ने कभी कहा कि उनका निग्रह नहीं हुआ था। क्या किसी साक्षी ने ऐसा बयान दिया था? क्या यह वाद-बिन्दु था? तब बिना किसी आधार के न्यायालय ने यह निर्धारण कैसे किया? जबकि स्वामी शान्तानन्द का निग्रह किये जाने के बहुत से प्रमाणों का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

एक बात यह कही गई है कि स्वामी शान्तानन्द ने आवेदन करके यह स्थगन मांगा था कि स्वामी कृष्णबोधाश्रम को शंकराचार्य के रूप में प्रयाग के माघ मेले में भाग लेने और जुलूस निकालने से रोका जाए। अदालत ने इस प्रश्न पर विचार नहीं

किया कि उनका अभिषेक हुआ है या नहीं। अगर एक व्यक्ति के रूप में उन पर मुकदमा चलाना था तो फौजदारी मुकदमा चलना था, दीवानी नहीं। और अभिषेक के बाद मुकदमा चलाया गया तो उन लोगों को भी पक्षकार बनाया जाना चाहिए था, जिनने उनका अभिषेक किया।

फिर स्थगनादेश केवल प्रयाग के माघ मेला क्षेत्र के लिए क्यों मांगा गया? पूरे ज्योतिष्पीठ क्षेत्र के लिए क्यों नहीं मांगा गया? केवल एक माघ मास के लिए क्यों मांगा गया, स्थायी रूप से क्यों नहीं? इस मामले में जज ने केवल स्वामी करपात्री जी और स्वामी वेदान्ती जी से क्यों कहा कि वे स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी को शंकराचार्य न कहें। यह रोक केवल दो लोगों पर क्यों लगायी गई सभी पर क्यों नहीं लगायी गई? फिर किसी व्यक्ति पर ऐसी रोक लगाना क्या उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का हनन नहीं है? ऐसा निर्णय क्या सीमित निर्णय नहीं है? और इसका स्वामी स्वरूपानन्द जी पर कोई प्रभाव कैसे माना जा सकता है? इस सब पर विचार ही नहीं किया गया है।

फिर जहां तक स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी के पश्चात् स्वामी स्वरूपानन्द जी को ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य बनाये जाने का प्रश्न है, वे स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी के शिष्य नहीं थे। न ही स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी ने कोई वसीयत की। उन्होंने तो काशी के विद्वानों को स्वामी स्वरूपानन्द जी के नाम का सुझाव मात्र दिया था। जब स्वामी स्वरूपानन्द जी का अभिषेक हुआ तो इसकी जिम्मेदारी उन सबकी थी, जिन्होंने उनका अभिषेक किया था। इस दृष्टि से इलाहाबाद उच्चन्यायालय का फैसला उन सब शंकराचार्यों और मनीषियों का अपमान है, जिन्होंने स्वामी स्वरूपानन्द जी का अभिषेक किया था।

भारत धर्म महामण्डल का अधिकार क्यों नहीं माना गया?

इसी दृष्टि से देखें तो न्यायालय ने इस बात की भी अनदेखी कर दी है कि स्वामी स्वरूपानन्द जी के 7 दिसम्बर 1973 को हुए चयन और अभिषेक में भी तो भारत धर्ममहामण्डल सम्मिलित था। यही नहीं, अभी भी जब न्यायालय ने एक ओर स्वामी स्वरूपानन्द जी के ज्योतिष्पीठ पर आसीन होने को अवैध करार दे दिया और स्वामी वासुदेवानन्द को अयोग्य ठहरा कर उन्हें भी पीठच्युत कर दिया और पीठ को रिक्त घोषित कर दिया तो फिर एक गतिरोध की स्थिति निर्मित हो गयी है। ऐसे में उच्च न्यायालय ने स्वयं अपनी ही मान्यता के अनुरूप एक मात्र भारत धर्म महामण्डल को ही नया शंकराचार्य चुनने के लिए अधिकृत क्यों नहीं किया? और, ऐसा करने की बजाय क्यों पांच लोगों को नया शंकराचार्य चुनने का आदेश दिया?

असमंजस और जटिलताएं

अब अगर 1941 की ट्रस्ट डीड के अनुरूप भारत धर्म महामण्डल अकेले ही नये शंकराचार्य का चयन करता भी है तो, उससे इलाहाबाद उच्चन्यायालय के वर्तमान आदेश की शर्तों का पालन तो नहीं होगा। स्पष्टत: स्थिति जबर्दस्त असमंजस की बन गयी है।

सवाल यह है कि उच्चन्यायालय ने जिन पांच लोगों को चयन का आदेश दिया है उनमें चयन – प्रक्रिया की शुरुआत कौन करेगा ? और, कौन उसका संचालन करेगा ? अगर इन पांचों के बीच सहमति न निर्मित हो सकी तो चयन कैसे होगा ? क्या इस दृष्टि से इलाहाबाद उच्च न्यायालय का आदेश पूर्णत: अव्यवहारिक नहीं रह जायेगा ?

अगर फैसले को क्रियान्वयन की सम्भाव्यता की दृष्टि से देखें तो, इसमें तीन शंकराचार्यों के साथ–साथ दो संस्थाओं–भारत धर्ममहामण्डल और काशी विद्वत् परिषद को नये शंकराचार्य का चयन करने में शामिल किया गया है। यह सवाल स्वाभाविक रूप से उठता है कि यह कैसे सम्भव होगा ? क्योंकि किसी भी संस्था में एक संयोजक होता है या कोई एक अधिकृत कार्यकारी पदधारक होता है, जिसका कोई निश्चित नाम और पहचान होती है। जबकि न्यायालय ने अपने आदेश में किसी भी संस्था के किसी पदाधिकारी को नामित नहीं किया है। तो , सवाल यह भी उठेगा कि इन पांचों से अदालत के निर्णय का पालन करने के लिए निवेदन करने जाएगा कौन या कौन इसकी पहल करेगा ? किसे न्यायालय ने ऐसा करने के लिए अधिकृत किया है ?

फिर तीन शंकराचार्य भले नये शंकराचार्य के चयन के सम्बंध में स्वतंत्र रूप से अभिमत दे सकते हैं, लेकिन अन्य दो तो संस्थाएं हैं, जिनमें निर्णय कोई एक पदाधिकारी निर्णयों को क्रियान्वित भले करे, लेकिन किसी भी विषय में निर्णय अकेला कोई एक व्यक्ति स्वतंत्र रूप से नहीं ले सकता। बल्कि, संस्था के सदस्यों या प्रबंधकारिणी समिति को ही निर्णय लेना होता है। ऐसे में यह प्रक्रिया कौन पूरी करेगा और कौन इसके लिए पहल करेगा ?

फिर, जहां तक तीन शंकराचार्यों का सवाल है, जिन्हें अधिकृत किया गया है। उन्हें एक साथ बैठाने की पहल कौन करेगा ? क्या इन पांचों का एक साथ बैठना और निर्णय करना आसान और सम्भव है ? ऐसा करने के लिए भी किसी एक व्यक्ति को तो अधिकृत किया जाना था जो उच्चन्यायालय द्वारा नहीं किया गया है। इस दृष्टि से क्या निर्णय अधूरा और अदूरदर्शितापूर्ण नहीं है ?

अब, अगर इस आदेश के क्रियान्वयन के असम्भव होने की बात करें तो ध्यान इस ओर भी जाता है कि न्यायालय ने जिन तीन शंकराचार्यों को ज्योतिष्पीठ का नया शंकराचार्य तीन माह की अवधि में चुनने का आदेश दिया है उनमें से एक तो

द्वारकापीठ के शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती स्वयं भी हैं, जिन्हें 44 सालों से ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में कार्य करते हुए अचानक कार्य करने से उच्चन्यायालय ने रोक दिया है। अब अगर वे ज्योतिष्पीठ के नये शंकराचार्य के चयन की प्रक्रिया में भागीदारी करने के इच्छुक नहीं हुए तो, क्या चयन प्रक्रिया अवरुद्ध नहीं हो जायेगी ? तब कैसे सम्भव होगा आदेश का क्रियान्वयन ? यों भी, यह बात उठ चुकी है कि जिन पांच लोगों को न्यायालय ने आदेश दिया है वे इस प्रकरण में पक्षकार ही नहीं थे, तो यह आदेश उन पर बन्धनकारी कैसे होगा ?

ज्योतिष्पीठाधीश्वर के लिए नये शंकराचार्य के चयन की बात करें तो यदि इस पद के लिए मठाम्नाय महानुशासनम् में निर्दिष्ट योग्यताओं और लक्षणों से युक्त कोई सन्यासी नहीं मिला और सभी ने पुनः स्वामी स्वरूपानन्द जी का ही चयन किया, जैसा कि पूर्व में द्वारकापीठ में तत्कालीन शंकराचार्य स्वामी अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ ने किया था, तो क्या होगा ?

अगर द्वारका के वर्तमान शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द जी चयन प्रक्रिया में सहभागिता कर स्वयं अपना ही चयन करते हैं तो क्या इसे पक्षपात नहीं कहा जायेगा ? सवाल यह भी है कि क्या द्वारकापीठ के शंकराचार्य के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द जी ऐसा करने तैयार भी होंगे ? ये सारे प्रश्न इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा आदेशित प्रक्रिया से ज्योतिष्पीठ के नये शंकराचार्य के चयन को असम्भव ठहरा देते हैं।

फिर न्यायालय ने यथा स्थिति बनाये रखने का आदेश दिया है। तो, स्थिति यह है कि न्यायालय ने आदेश की तिथि से स्वामी वासुदेवानन्द को तो अयोग्य ठहराते हुए पीठ रिक्त घोषित कर दी है, लेकिन न्यायालय ने 44 वर्षों से ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में कार्यरत स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी के अधिष्ठापन को अवैध मानते हुए भी उनके अभिषेक की वास्तविकता को स्वीकार किया है। लेकिन उनका निषेध भी स्पष्ट रूप से न करते हुए उन्हें मात्र कार्य न करने के लिए कहा है और पीठ को रिक्त घोषित कर दिया है। तो, यथा स्थिति क्या यह मानी जाये कि स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी नामोपयोग की दृष्टि से तो ज्योतिष्पीठाधीश्वर बने रहेंगे, पर शंकराचार्य के रूप में कोई कार्य नहीं कर सकेंगे ? क्या यह स्थिति– वैचित्र्य का उदाहरण नहीं है ?

28 वर्षों तक एक अयोग्य व्यक्ति का अधिष्ठापन वैध कैसे माना जाएगा?

वर्तमान स्थितियों में यह प्रश्न सहज ही उठता है कि न्यायालय स्वयं जब स्वामी वासुदेवानन्द को सन्यास तक के लिए अयोग्य मानता है और उन्हें फैसले के दिन से शंकराचार्य पद से पृथक करता है तो वह 28 वर्षों तक एक अयोग्य व्यक्ति के

ज्योतिष्पीठ पर शंकराचार्य के रूप में अधिष्ठापित रहने को वैध कैसे मानता है ? यदि नहीं, तो फिर स्वामी वासुदेवानन्द के अयोग्य होने के कारण उसी दिनांक से ज्योतिष्पीठ को रिक्त क्यों नहीं मानता जिस दिन अर्थात् 15 नवम्बर 1989 को स्वामी वासुदेवानन्द ने स्वयं को शंकराचार्य घोषित किया था ? 28 वर्षों तक एक नितान्त आयोग्य व्यक्ति के ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में कथित अधिष्ठापन को वैध मान लिया जाना क्या प्राकृतिक न्याय की दृष्टि से न्यायोचित माना जा सकता है ?

सवाल यह भी उठता है कि 15 नवम्बर 1989 से ही पीठ रिक्त थी तो उसी तिथि से उन सन्यासी (स्वामी स्वरूपानन्द जी) को मान्य क्यों नहीं किया गया, जिनका विधिवत अभिषेक हो चुका था ?

अप्रत्यक्ष रूप से तो इन पांचों के विवेक पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया गया है

अगर 1953 और 1973 में ज्योतिष्पीठ पर क्रमशः स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी और स्वामी स्वरूपानन्द जी के तीनों शंकराचार्यों भारत धर्म महामण्डल और काशी विद्वत् परिषद द्वारा शास्त्रोक्त विधि से अभिषेक को इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा दोषपूर्ण और अवैध माना गया है, तो क्या यह इन दोनों को दोषी ठहराये जाने के साथ-साथ तीनों शंकराचार्यों सहित उन महात्माओं को भी दोषी मानने का कृत्य नहीं है, जिन्होंने इन दोनों का अभिषेक किया ? क्या धार्मिक दृष्टि से इन सबको इस बात का दोषी माना जायेगा कि 'पीठ के रिक्त' न होते हुए भी इन महात्माओं ने दो सन्यासियों को जंजाल में क्यों फंसाया ?

अगर इस दृष्टि से देखें तो क्या इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी और स्वामी स्वरूपानन्द जी के चयन और अभिषेक को त्रुटिपूर्ण और अवैध ठहराया जाना उनका अभिषेक करने वाले तीनों शंकराचार्यों और अन्य महात्माओं के विवेक पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करना और उनका अपमान किया जाना नहीं है ?

इस स्थिति में यह सवाल उठता है कि जब उच्चन्यायालय ने स्वयं स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी और स्वामी स्वरूपानन्द जी का चयन कर उनका अभिषेक किये जाने के मामले में तीनों शंकराचार्यों, भारत धर्ममहामण्डल और काशी विद्वत् परिषद के विवेक के आगे प्रश्न चिन्ह लगाया है तो अब फिर उसने नये शंकराचार्य के चयन का काम पुनः उन्हीं के विवेक पर क्यों छोड़ा है ? क्या फिर उनके द्वारा चयनित व्यक्ति को शंकराचार्य मानने पर प्रश्न चिन्ह खड़ा नहीं होगा ?

शंकराचार्य के चयन की पद्धति का रूप ही बदल जाएगा

इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ज्योतिष्पीठ को रिक्त मानकर 1941 वाली प्रणाली/पद्धति अपनाने का आदेश देते हुए शंकराचार्य का चयन करने के लिए तीन शंकराचार्यों और दो संस्थाओं को जो आदेश दिया है। उससे 1941 में अपनायी गई पद्धति का रूप ही बदल जायेगा। क्योंकि 165 वर्षों तक विच्छिन्न रही ज्योतिष्पीठ के पुनरुद्धार के लिए तीनों तत्कालीन शंकराचार्यों ने भारत धर्म महामण्डल को सनातन धर्म का प्रतिनिधि मानकर ही उसे ज्योतिष्पीठ का नया शंकराचार्य चुनने के लिए अधिकृत किया था। इसका सीधा अर्थ यह है कि मण्डल के कार्य पर तीनों शंकराचार्यों की स्वीकृति की मोहर पहले ही लग चुकी थी।

यह आदेश परिणामदायक उपाय नहीं है

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि तीनों शंकराचार्यों ने 1941 में तो भारत धर्म महामण्डल को अधिकृत किया था। लेकिन अब इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने नया शंकराचार्य चुनने के लिए किसी एक को अधिकृत नहीं किया है। बल्कि, एक साथ पांच लोगों को, जिनमें से दो संस्थाएं हैं, उनको 3 माह में नया शंकराचार्य चुनने का निर्देश दिया है। स्पष्ट रूप से यह कोई निश्चित परिणामदायक उपाय नहीं है, क्योंकि नये शंकराचार्य के चुनाव में यदि इनमें से एक ने भी असहमति व्यक्त कर दी तो चयन कैसे होगा ? और, ऐसे में पीठ तो रिक्त ही रही आयेगी।

जाहिर है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय से एक बार फिर ज्योतिष्पीठ 241 वर्ष पूर्व की उसी स्थिति में पहुंच गया है, जिसमें 1941 तक 165 वर्ष तक पीठ विच्छिन्न रही आयी थी। अगर भविष्य में भी ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के चयन के लिए यही पद्धति अपनायी गई तो आशंका यही होगी कि ज्योतिष्पीठ का पुनरुद्धार सदा के लिए समाप्त हो जाएगा।

शंकराचार्य के रूप में 44 वर्षों तक स्वामी स्वरूपानन्द जी द्वारा किये गये कार्यों की वैधता?

अब अगर मान लें ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में वर्तमान शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द जी को ही सबका समर्थन मिल जाए और उनका नवीन अभिषेक हो जाए तो यह सवाल उठेगा कि ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य के रूप में पिछले 44 वर्षों में उनके द्वारा किये गए कार्यों का क्या होगा ? वे कार्य वैध माने जायेंगे या अवैध ? अगर अवैध माने जायेंगे तो क्या यह इतिहास को पीछे ढकेल देना नहीं होगा ? जबकि उन्होंने इन 44 वर्षों में ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में जो कार्य किये हैं, उनमें से कई तो ऐतिहासिक कार्य हैं जिनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

स्वामी शान्तानन्द की योग्यता पर कन्नी क्यों काटी गई?

यह स्थिति हमें 1953 की ओर वापस देखने के लिए विवश करती है, जब स्वामी शान्तानन्द ने ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य पद पर दावा किया था। अधीनस्थ न्यायालय ने स्वामी शान्तानन्द को न केवल अयोग्य घोषित किया था, बल्कि यह तक लिखा था कि स्वामी ब्रह्मानन्द जी द्वारा एक अयोग्य व्यक्ति को अपना उत्तराधिकारी नामित किया जाना भी वैध नहीं था। भले तकनीकी आधार पर वह प्रकरण खारिज हो गया लेकिन उस प्रकरण में जज द्वारा की गई टिप्पणी तो आज भी वैध और प्रासंगिक है। आश्चर्यजनक रूप से इलाहाबाद उच्चन्यायालय एक प्रश्न किये जाने योग्य आधार पर स्वामी शान्तानन्द की अयोग्यता पर टिप्पणी करने से कन्नी काट गया है।

यह प्रश्न आज भी जीवन्त है कि अगर स्वामी शान्तानन्द अयोग्य न होते तो, विद्वान उन्हें अयोग्य करार देकर उनका विरोध क्यों करते? जिन मनीषियों ने स्वामी शान्तानन्द का विरोध किया उनका तो कोई निजी स्वार्थ नहीं था और ज्योतिष्पीठ की सम्पत्ति में उनकी कोई रुचि भी नहीं थी। तब स्पष्ट है कि उनके द्वारा स्वामी शान्तानन्द का विरोध किये जाने का एकमात्र कारण यही था कि स्वामी शान्तानन्द मठाम्नाय -महानुशासनम् की दृष्टि से अयोग्य और अपढ़ थे और उनका तो शास्त्रोक्त विधि से कभी इस पद पर अभिषेक ही नहीं हुआ। बल्कि, वे ताला तोड़कर मठ में घुसे थे और उन्होंने स्वयं को शंकराचार्य घोषित कर दिया था।

द्वारका पीठाधीश्वर को मठाम्नाय और सुधन्वा का ताम्रपत्र के अनुसार निर्णायक क्यों नहीं माना?

यहां यह तथ्य पुनः रेखांकित किये जाने योग्य है कि 1953 में हुए स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी के शास्त्रोक्त विधि से हुए अभिषेक और ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किये जाने पर कोई अदालत विचार कर ही नहीं सकती। क्योंकि उनका अभिषेक तत्कालीन द्वारका शारदा पीठाधीश्वर स्वामी अभिनव सच्चिदानंद तीर्थ जी महाराज ने स्वयं अपने करकमलों से किया था। जिनके निर्णय को चुनौती दी ही नहीं जा सकती क्योंकि द्वारकाशारदा पीठाधीश्वर का निर्णय उस मठाम्नाय महानुशासनम् और राजा सुधन्वा के ताम्रपत्र के अनुसार निर्णायक होता है, जिसे स्वयं इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने कानून माना है।

इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी को शंकराचार्य न मानने पर यह प्रश्न भी उपस्थित होता है कि अगर वे शंकराचार्य नहीं थे, तो शंकराचार्य के रूप में निचली अदालतों में भी उनका वाद ग्राह्य और स्वीकार्य नहीं

होता। क्योंकि उन्हें तब प्रामाणिक वादी माना ही नहीं जाता, जबकि स्वामी स्वरूपानन्द जी तो सदैव ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य के रूप में ही वादी माने गये। बल्कि, लोअर कोर्ट से सुप्रीम कोर्ट तक जहां भी वाद या अपील के रूप में प्रकरण प्रस्तुत हुए उन पर स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती को ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य मानते हुए ही विचार किया गया और किसी भी अदालत में किसी भी स्तर पर इस बात पर सवाल नहीं उठा। यहां तक कि स्वामी वासुदेवानन्द ने अन्य न्यायालयों के साथ इलाहाबाद उच्चन्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत अपनी सद्यः निर्णीत अपील में भी स्वामी स्वरूपानन्द जी को ज्योतिष्पीठाधीश्वर शंकराचार्य मानते हुए ही उनके विरुद्ध प्रकरण प्रस्तुत किया है। तब एकाएक और अचानक इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह बात क्यों उठायी ? यह प्रश्न भी अपना उत्तर तलाश रहा है।

तो ज्योतिष्पीठ 241 वर्ष पुरानी हालत में पहुंच जायेगी

इस स्थिति को अगर तमाम प्रश्नों और किन्तुओं-परन्तुओं के दायरे में देखें तो पीठ अनिश्चय के भंवर में फंस कर ऐसे अंधकार में गुम होती दिख रही है, जहां दूर-दूर तक प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखती। ऐसे में देश में सनातनी हिन्दुओं की सबसे सुदृढ़ शांकर परम्परा की चार में से एक महत्वपूर्ण पीठ ज्योतिष्पीठ को अनिश्चय के गहरे अंधकार में ढकेल देने का दोषी किसे माना जायेगा ?

अगर स्थिति के यथार्थ को देखें तो, ज्योतिष्पीठ क्या उसी स्थिति में ही नहीं पहुंचाई जा रही हैं जहां 1941 के पहले वह 165 वर्षों तक रही आई थी ? सनातनी हिन्दुओं के लिए वे दुर्दिन किसी दुःस्वप्न से कम नहीं थे। क्या सनातनी हिन्दू एक बार फिर वैसे ही दुर्दिनों को भोगने के लिए अभिशप्त हो रहे हैं ?

शांकर परम्परा में आस्था रखने वाले हिन्दू इसे कैसे सहन करेंगे ? क्या दिग्भ्रम का शिकार हो जाने से उनमें निराशा, हताशा, कुण्ठा और तज्जन्य आक्रोश का उभार नहीं होगा ? अगर ऐसा अक्रोश भड़का, तो उसका परिणाम क्या होगा और कौन इसके लिए जिम्मेदार होगा ? क्या देश ऐसी किसी अराजकता की स्थिति को स्वीकार करने की स्थिति में है ? लिहाजा व्यापक लोकहित की दृष्टि से इस स्थिति पर समग्रता में विचार किया जाना समय की मांग है।

हाईकोर्ट के फैसले पर प्रश्न ही प्रश्न हैं... उत्तर कौन देगा ?

प्रश्न क्रमांक-1 :उच्च न्यायालय ने जब स्वयं मठाम्नाय महानुशासनम् को कानून और राजा सुधन्वा के ताम्रपत्र को महत्वपूर्ण माना है तो उसने स्वामी शान्तानन्द को अयोग्य और अपात्र होने के बावजूद शंकराचार्य कैसे मान लिया ?

प्रश्न क्रमांक-2 : क्या इलाहाबाद उच्चन्यायालय के समक्ष पेश अपील में स्वामी स्वरूपानन्द जी के 44 वर्ष पूर्व ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में हुए अधिष्ठापन का प्रश्न निर्धारण के लिए प्रस्तुत हुआ था ? क्या अपीलार्थी ने यह अनुतोष अपनी अपील में मांगा था ?

प्रश्न क्रमांक-3 :एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि जिस प्रकरण में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है, वह रिट नहीं, अपील थी। तो क्या एक अपील में ऐसा अनुतोष (रिलीफ) दिया जाना चाहिए, जो अपीलार्थी ने मांगा ही नहीं था ?

प्रश्न क्रमांक-4 : क्या 44 वर्ष पूर्व घटित घटना न्याय की दृष्टि से अब कालबाधित नहीं है ? और क्या 44 वर्ष पूर्व स्वामी स्वरूपानन्द जी के ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में अधिष्ठापन पर अब विचार किया जा सकता है ? क्या भूतकालिक प्रभाव से स्वामी स्वरूपानन्द जी के अधिष्ठापन को समाप्त किया जा सकता है ?

प्रश्न क्रमांक-5 : विगत 44 वर्षों में ज्योतिष्पीठाधीश्वर स्वामी स्वरूपानन्द जी अधिष्ठापन पर कभी भी किसी ने भी किसी भी स्तर पर कोई प्रश्न नहीं किया तब अचानक और अनपेक्षित रूप से उनके अधिष्ठापन को उच्च न्यायालय द्वारा अवैध क्यों ठहराया गया ?

प्रश्न क्रमांक-6 : स्वामी स्वरूपानन्द जी का अधिष्ठापन अवैध ठहराया जाना क्या उन तीनों शंकराचार्यों भारत धर्म महामण्डल और काशी विद्वत् परिषद का अपमान नहीं है, जिन्होंने उनका अभिषेक किया था ?

प्रश्न क्रमांक-7 : अगर ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में स्वामी स्वरूपानन्द जी को अमान्य किया जाता है तो उनके द्वारा 44 वर्षों में किये गये कार्यों को वैध माना जाएगा या अवैध, जबकि उनके द्वारा किये गए कई कार्य ऐतिहासिक हैं।

प्रश्न क्रमांक-8 : यह भी महत्वपूर्ण प्रश्न है कि प्रकरण में जो लोग कभी किसी भी स्तर पर पक्षकार ही नहीं रहे हैं (उदाहरणार्थ- तीनों शंकराचार्य, भारत धर्म महामण्डल और काशी विद्वत् परिषद) क्या उच्च न्यायालय उन्हें निर्देश दे सकता है ? और, क्या ऐसा निर्देश उन लोगों पर बन्धनकारी हो सकता है ?

प्रश्न क्रमांक-9 : मठाम्नाय महानुशासनम् के अनुसार स्वामी शान्तानन्द का 'निग्रह' हो जाने के बावजूद उच्चन्यायालय ने पीठ को 1953 से ही रिक्त घोषित क्यों नहीं किया ?

प्रश्न क्रमांक-10 : यह स्पष्ट हो जाने के बावजूद कि स्वामी स्वरूपानन्द जी का ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में अभिषेक स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी द्वारा नामित उत्तराधिकारी के रूप में नहीं हुआ बल्कि 1941 की पद्धति से हुआ, इस प्रसंग में गुरु-शिष्य परम्परा का सवाल उच्च न्यायालय द्वारा क्यों उठाया गया ?

प्रश्न क्रमांक-11 : 1941 की भारत धर्ममहामण्डल की ट्रस्ट डीड में यह प्रावधान है कि

गतिरोध की किसी स्थिति में वह स्वयं नये शंकराचार्य का चयन करेगा और स्वयं इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने इस बात का संज्ञान भी लिया है। तब, अभी 2017 में ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर उच्च न्यायालय द्वारा नये शंकराचार्य के चयन का दायित्व एकमात्र उसे न सौंप कर पांच लोगों को क्यों सौंपा ?

प्रश्न क्रमांक-12 : उच्च न्यायालय ने राजा सुधन्वा के ताम्रपत्र को मानते हुए भी उसमें विवाद की स्थिति में द्वारका के शंकराचार्य के निर्णायक होने के प्रावधान को मान्यता क्यों नहीं दी ? और, नया शंकराचार्य चुनने के अपने आदेश में केवल उनके अधिकार को न मानकर उनके साथ दो अन्य शंकराचार्यों और दो संस्थाओं को क्यों जोड़ दिया ? क्या इस व्यवस्था से ज्योतिष्पीठ पर शंकराचार्य के चयन की पद्धति का स्वरूप ही हमेशा के लिए नहीं बदल जायेगा ?

प्रश्न क्रमांक-13 : इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार क्यों नहीं किया कि नये शंकराचार्य के चयन के लिए पांच लोगों को निर्देश देना अव्यवहारिक और जटिल है तथा उसका क्रियान्वयन सम्भव नहीं हो सकेगा ?

प्रश्न क्रमांक-14: क्या उच्च न्यायालय के इस जटिल, अव्यवहारिक और असम्भाव्य आदेश से ज्योतिष्पीठ को 241 वर्ष पुराने अंधेरे में नहीं ढकेला जा रहा है ? क्या इस आदेश से ज्योतिष्पीठाधीश्वर का चयन लगभग असम्भव हो जाने से ज्योतिष्पीठ की शंकराचार्य परम्परा ही हमेशा के लिए एक बार फिर विछिन्न नहीं हो जायेगी ?

प्रश्न क्रमांक-15 : प्रश्न यह भी है कि जब इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 1953 और 1973 में तीन शंकराचार्यों, भारत धर्म महामण्डल और काशी विद्वत् परिषद द्वारा चयनित और अभिषिक्त सन्यासियों को शंकराचार्य नहीं माना तो वही न्यायालय 2017 में नये शंकराचार्य के चयन का प्रश्न इन्हीं पांचों के विवेक पर कैसे छोड़ रहा है ?

प्रश्न क्रमांक-16 : क्या इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा एक प्रकरण में एक जैसे दो मामलों का निर्णय देने में दो अलग-अलग सिद्धान्त अपनाये जा सकते हैं ? उदाहरणार्थ स्वामी वासुदेवानन्द के मामले में उसने 'योग्यता' को 'वसीयत' से ऊपर मानकर निर्णय दिया जबकि स्वामी शान्तानन्द के मामले में स्वयं उसने 'वसीयत' को 'योग्यता' के ऊपर मान लिया, ऐसा क्यों ?

प्रश्न क्रमांक-17 : इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी द्वारा स्वामी शान्तानन्द के विरुद्ध दायर अपील पर विचार के दौरान ही स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी के ब्रह्मलीन हो जाने से उस प्रकरण के अबेट होने का लाभ यदि स्वामी शान्तानन्द को दिया तो, सिवनी में स्वामी स्वरूपानन्द जी द्वारा स्वामी शान्तानन्द व वसीयत में नामित अन्य तीन के विरुद्ध दायर प्रकरण में प्रकरण के विचाराधीन रहते चारों प्रतिवादियों का निधन हो जाने से प्रकरण के अबेट हो जाने का लाभ स्वामी स्वरूपानन्द जी को क्यों नहीं दिया ?

प्रश्न क्रमांक-18 : अगर कोई यह कहे कि कालबाधित हो जाने के कारण अब स्वामी शान्तानन्द की योग्यता को चुनौती नहीं दी जा सकती, तो क्या यह हास्यास्पद नहीं है ? क्योंकि यह प्रश्न तो 1953 से अब तक जीवन्त बना है। यह इसलिए क्योंकि स्वामी

स्वरूपानन्द जी द्वारा प्रस्तुत वाद में भी स्वामी शान्तानन्द की योग्यता को चुनौती दी गई है। और वह वाद आबेट हुआ है।

प्रश्न क्रमांक-19 : इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने मठाम्नाय महानुशासनम् को कानून माना है, जिसमें उत्तराधिकारी के चयन के लिए योग्यता और लक्षणों को ही एक मात्र आधार माना गया है और उसमें वसीयत द्वारा उत्तराधिकार का प्रावधान ही नहीं है। तब यह प्रश्न उठता है कि इस प्रकरण में वसीयत को कानून से ऊपर क्यों माना गया ? क्या एक 'वसीयत' 'कानून' से ऊपर हो सकती है ?

प्रश्न क्रमांक-20 : जब एक बार इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने शांकर पीठों के संचालन, नियमन और प्रबंधन के विषय में मठाम्नाय-महानुशासनम् को 'कानून' मान लिया और राजा सुधन्वा के ताम्रपत्र को स्वीकार्य मान लिया तो फिर क्या स्वयं उच्च न्यायालय पर यह बंधनकारी नहीं हो गया है कि वह ज्योतिष्पीठ से सम्बंधित सभी प्रश्नों का निराकरण कथित वसीयतों की बजाय मठाम्नाय-महानुशासनम् और राजा सुधन्वा के ताम्रपत्र में दिये गए निर्देशों और प्रावधानों के अनुरूप उनकी मर्यादा में करे ?

प्रश्न क्रमांक-21 : प्रश्न यह भी उपस्थित होता है कि स्वामी शान्तानन्द, स्वामी विष्णुदेवानन्द और स्वामी वासुदेवानन्द के रूप में क्रमागत रूप से गुरु-शिष्य परम्परा का पालन न होने पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने ध्यान क्यों नहीं दिया ? क्योंकि स्वामी विष्णुदेवानन्द स्वामी शान्तानन्द के नहीं, स्वामी ब्रह्मानन्द जी के शिष्य थे और स्वामी वासुदेवानन्द स्वामी विष्णुदेवानन्द के नहीं, स्वामी शान्तानन्द के शिष्य थे। तब इनकी तथाकथित नियुक्ति में उत्तराधिकार के लिए गुरु-शिष्य परम्परा का पालन होना कैसे माना जायेगा ?

प्रश्न क्रमांक-22 : इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने राजा सुधन्वा के ताम्रपत्र का संज्ञान लिया है, उसमें प्रावधान है कि किसी तरह के विवाद की स्थिति में द्वारकाशारदा पीठ के शंकराचार्य ही निर्णायक होंगे। तब इस दृष्टि से इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी और स्वामी स्वरूपानन्द जी को द्वारका पीठाधीश्वर द्वारा ज्योतिष्पीठाधीश्वर माने जाने के निर्णय को वैध क्यों नहीं माना ?

प्रश्न क्रमांक-23 : जब उच्चन्यायालय ने ज्योतिष्पीठ के नये शंकराचार्य का चयन तीन माह में 1941 में नये शंकराचार्य के चयन हेतु अपनायी गई पद्धति से करने का निर्देश दिया है, तो उसने इस तथ्य की अनदेखी क्यों की कि वर्तमान ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी का अभिषेक भी 7 दिसम्बर 1973 को इसी पद्धति से ही किया गया था ? अब इसी पद्धति से नया शंकराचार्य चुनने के लिये दिए गए आदेश का औचित्य कैसे सिद्ध होगा ?

प्रश्न क्रमांक-24 : प्रश्न यह भी उठता है कि जब 1953 में स्वामी शान्तानन्द का चयन इसी पद पर इसी पद्धति से नहीं हुआ तो उन्हें इलाहाबाद हाईकोर्ट द्वारा वैध क्यों मान लिया गया ? उनका अभिषेक न तीन शंकराचार्यों ने किया था, न भारत धर्ममहामण्डल ने और न काशी विद्वत् परिषद ने। जबकि भारत, धर्म महामण्डल सहित इन सभी ने स्वामी शान्तानन्द को

अस्वीकार करते हुए ही स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी को ज्योतिष्पीठाधीश्वर नियुक्त किया था। तो, इस स्थिति में स्वामी शान्तानन्द को कैसे वैध शंकराचार्य माना जा सकता है ?

प्रश्न क्रमांक-25 : इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर भी ध्यान क्यों नहीं दिया कि केवल नामित हो जाने से कोई वैधानिक रूप से शंकराचार्य नहीं हो जाता। इसके लिए उसका विद्वानों द्वारा शास्त्रोक्त विधि से अभिषेक किया जाना जरूरी है। इस दृष्टि से ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में शास्त्रोक्त पद्धति से विधानपूर्वक स्वामी शान्तानन्द का अभिषेक कभी हुआ ही नहीं ?

प्रश्न क्रमांक-26 : इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान क्यों नहीं दिया कि शंकराचार्य के रूप में अपना अभिषेक कोई व्यक्ति स्वयं नहीं कर सकता बल्कि अन्य सुपात्र लोग उसका शास्त्रोक्त विधि से अभिषेक करते हैं। जबकि स्वामी शान्तानन्द तो मठ का ताला तोड़ कर अन्दर घुसे और स्वयं को शंकराचार्य घोषित कर दिया।

प्रश्न क्रमांक-27 : आद्य शंकराचार्य द्वारा स्थापित चारों पीठें स्वयं उनके द्वारा रचित विधान मठाम्नाय महानुशासनम् के प्रावधानों से ही संचालित हो सकती हैं, मौरूसी मठ की सामान्य परम्पराओं से नहीं। मठाम्नाय महानुशासनम् को कानून की मान्यता देने वाले उच्च न्यायालय ने स्वयं इस तथ्य की अनदेखी क्यों की ?

प्रश्न क्रमांक-28 :उच्च न्यायालय द्वारा इस तथ्य की अनदेखी क्यों की गई कि सामान्य मठ तो महंतों और मठाधीशों के होते हैं, जिनमें सम्पत्ति की प्रधानता होती है और वहां वसीयत तथा गुरु-शिष्य परम्परा से उत्तराधिकारी चुना जा सकता है जबकि शांकर पीठों में ज्ञान की प्रधानता होती है और उनकी पीठ आचार्य पीठ होती है, जिनके अधिपति आचार्य होते हैं, सामान्य महंत नहीं। और, आचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ही हो सकते हैं, सामान्य साधु-सन्यासी नहीं। अतएव उन पर उत्तराधिकारी का चयन मठाम्नाय महानुशासनम् के अन्तर्गत ही हो सकता है।

प्रश्न क्रमांक-29 : मनीषियों द्वारा प्रारम्भ से ही स्वामी शान्तानन्द को बार-बार शंकराचार्य पद के लिए अयोग्य और अपात्र ठहराये जाने और उन्हें शंकराचार्य के रूप में अस्वीकार किये जाने और एडीजे कोर्ट द्वारा इसकी पुष्टि किये जाने के बावजूद उच्चन्यायालय ने इस सबको स्वामी शान्तानन्द का वैध 'निग्रह' क्यों नहीं माना ?

प्रश्न क्रमांक-30 : यह कहा गया है कि स्वामी शान्तानन्द के निग्रह के प्रमाण उपलब्ध न होने से उसे नहीं माना जा सकता। प्रश्न उठता है कि- न्यायालय को यह ज्ञान कहां से हुआ ? क्या स्वयं स्वामी शान्तानन्द ने कभी कहा कि उनका निग्रह नहीं हुआ था किसी साक्षी ने ऐसा कहा।

प्रश्न क्रमांक-31 : क्या स्वामी शान्तानन्द की अयोग्यता का विषय प्रस्तुत अपील में वाद बिन्दु था ? और क्या न्यायालय ने किसी को स्वामी शान्तानन्द की अयोग्यता के प्रमाण प्रस्तुत करने का आदेश दिया था ?

प्रश्न क्रमांक-32 : इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने स्वामी शान्तानन्द की अयोग्यता पर स्वयं

विचार करने की बजाय यह कहकर कन्नी क्यों काट ली कि अगर वसीयत में उनका नाम लिखा गया है तो उन्हें योग्य मानकर ही उनका नाम लिखा गया होगा ?

प्रश्न क्रमांक-33: प्रश्न यह भी है कि जब इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सन्यास के नियमों की विषद व्याख्या अपने फैसले में की है तो उसने स्वामी शान्तानन्द और स्वामी वासुदेवानन्द द्वारा की गई विदेश यात्रा के कारण उनका दण्ड अशुद्ध हो जाने और उनका सन्यास भंग हो जाने के कारण उनकी सन्यासी होने की पात्रता ही समाप्त हो जाने पर विचार क्यों नहीं किया ? ये दोनों तो सन्यासच्युत हो चुके थे। जब ये दोनों सन्यासी ही नहीं थे तो वे वैध शंकराचार्य कैसे माने जा सकते थे ?

प्रश्न क्रमांक-34 :स्वामी शान्तानन्द के आवेदन पर निश्चित काल और स्थान के लिए व्यक्ति लक्षित स्थगनादेश के लोकलक्षित न होने और स्पष्टतः स्वामी स्वरूपानन्द जी के लिए लक्षित न होने की स्थिति को हाईकोर्ट द्वारा ध्यान में क्यों नहीं रखा गया ?

प्रश्न क्रमांक-35 :स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी का चयन और अभिषेक तो 1941 वाली पद्धति से ही हुआ था। तब उनके विषय में गुरु-शिष्य परम्परा का त्रुटिपूर्ण आधार उच्च न्यायालय द्वारा क्यों माना गया ?

प्रश्न क्रमांक-36 :शांकर पीठें सामान्य मठ नहीं, ज्ञानपीठ होती हैं, इसलिए उन पर उत्तराधिकार मौरूसी मठ की परम्पराओं से नहीं, मठाम्नाय के अनुरूप योग्यता के धारकों की दृष्टि से निश्चित होना चाहिए। इस तथ्य का संज्ञान उच्च न्यायालय द्वारा क्यों नहीं लिया गया ? मौरूसी मठ की सामान्य वसीयत और गुरु-शिष्य परम्परा की दृष्टि से ज्योतिष्पीठ के उत्तराधिकार के प्रश्न को क्यों देखा गया ?

प्रश्न क्रमांक-37 :उच्चन्यायालय द्वारा अगर स्वामी ब्रह्मानन्द जी वसीयत में दर्ज चार नामों पर ध्यान दिया गया तो उसमें गुरु-शिष्य परम्परा के स्पष्ट उल्लंघन पर ध्यान क्यों नहीं दिया गया ? जबकि गुरु-शिष्य परम्परा के आधार पर वरिष्ठतम शिष्य को ही उत्तराधिकारी बनाया जाना चाहिए ?

प्रश्न क्रमांक-38 :उच्च न्यायालय द्वारा इस बात पर विचार क्यों नहीं किया गया कि वसीयत में निचले क्रम पर नामित अन्य तीनों लोग ही स्वामी शान्तानन्द से वरिष्ठ थे। जबकि वरिष्ठता क्रम में तो इन चारों से पहले शंकराचार्य पद स्वीकार करने से इनकार करने वाले स्वामी करपात्री जी स्वामी ब्रह्मानन्द जी के वरिष्ठतम शिष्य थे, और फिर उनके पश्चात् स्वामी स्वरूपानन्द जी ही स्वामी ब्रह्मानन्द जी के वरिष्ठतम शिष्य थे। तब गुरु-शिष्य परम्परा की दृष्टि से देखें तो, वरिष्ठता की दृष्टि से इन्हें ही उत्तराधिकारी नामित किया जाना चाहिए था। परन्तु ऐसा नहीं किया गया। क्या इस दृष्टि से भी वसीयत दोषपूर्ण और अवैध नहीं मानी जाना चाहिए थी ?

प्रश्न क्रमांक-39 :उच्चन्यायालय द्वारा इस तथ्य की अनदेखी क्यों की गई कि ज्योतिष्पीठ पर स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी (1953) और स्वामी स्वरूपानन्द जी (1973)की ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में नियुक्ति मठाम्नाय महानुशासनम् के प्रावधानों के अन्तर्गत की गई थी, जिसमें सामान्य मौरूसी गुरु-शिष्य परम्परा और वसीयत से अधिक महत्व

मठाम्नाय महानुशासनम् में निर्दिष्ट योग्यता और लक्षणों का होता है।

प्रश्न क्रमांक-40 :तमाम विसंगतियों और अवैधानिक प्रावधानों के बावजूद उच्चन्यायालय द्वारा स्वामी ब्रह्मानन्द जी की कथित वसीयत को वैध कैसे मान लिया गया? स्वामी शान्तानन्द द्वारा इस कथित वसीयत का उल्लंघन किये जाने के बावजूद उसे अवैध और प्रभाव शून्य क्यों नहीं माना गया?

प्रश्न क्रमांक-41: उच्च न्यायालय के फैसले पर प्रश्न यह भी है कि क्या शांकर पीठों को वसीयत के नाम पर मठों की पारिवारिक या कौटुम्बिक सम्पत्ति जैसा बनाने दिया जा सकता है, जैसी कि चेष्टा स्वामी ब्रह्मानन्द जी की वसीयत के नाम पर उनके भांजे (पूर्वाश्रम की बहन के पुत्र) स्वामी शान्तानन्द को वसीयत में प्रथम स्थान पर नामित करके की गई।

प्रश्न क्रमांक-42 : उच्चन्यायालय द्वारा इस तथ्य को ध्यान में क्यों नहीं रखा गया कि मठाम्नाय महानुशासनम् के अनुसार किसी गृहस्थ को शंकराचार्य नहीं बनाया जा सकता। जबकि स्वामी ब्रह्मानन्द जी की कथित वसीयत में नामित चार में से तीन लोग गृहस्थ ही थे। और चौथे स्वामी परमानन्द के पैर का अंगूठा कटा हुआ था और अंग-भंग होने के कारण वे शंकराचार्य बनने के योग्य नहीं थे।

प्रश्न क्रमांक-43 : इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने यह अवधारणा प्रस्तुत की है कि अगर स्वामी शान्तानन्द की अयोग्यता को मान भी लिया जाए तो किसी 'बाहरी' (स्वामी कृष्णबोधाश्रम की ओर संकेत) को शंकराचार्य बनाने से पहले स्वामी ब्रह्मानन्द जी की कथित वसीयत में नामित अन्य तीन लोगों के नामों पर क्रमागत रूप से विचार किया जाना चाहिए था। यहां प्रश्न उठता है कि इस बात पर ध्यान क्यों नहीं दिया गया कि जिन तीन नामितों की बात की गई है उन्होंने स्वामी शान्तानन्द के निग्रह के समय शंकराचार्य पद पर अपना दावा प्रस्तुत नहीं किया था, बल्कि वे तो स्वयं स्वामी कृष्णबोधाश्रम के ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में हुए सार्वजनिक अभिषेक में सोत्साह सम्मिलित हुए थे।

प्रश्न क्रमांक-44 : इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने स्वामी वासुदेवानन्द को शंकराचार्य पद ही नहीं, सन्यास तक के लिए अयोग्य माना है। तो उनकी अयोग्यता के कारण उनके द्वारा स्वयं को शंकराचार्य घोषित किये जाने की तिथि 15 नवम्बर 1989 से ही पीठ को रिक्त घोषित क्यों नहीं किया गया?

प्रश्न क्रमांक-45 : जब स्वामी वासुदेवानन्द को अयोग्य ठहराया गया है तो 28 वर्षों तक शंकराचार्य के रूप में उनका अधिष्ठापन अवैध ही माना जाना चाहिए। ऐसा क्यों नहीं किया गया?

प्रश्न क्रमांक-46 : जब इलाहाबाद उच्चन्यायालय ने स्वामी वासुदेवानन्द द्वारा स्वयं को सन्यासी घोषित करने के कृत्य को फर्जीबाड़ा और ठगी कहा है तो उनके विरुद्ध आपराधिक प्रकरण दर्ज कर उन्हें दण्डित किये जाने का निर्देश क्यों नहीं दिया गया?

प्रश्न क्रमांक-47:जब स्वामी वासुदेवानन्द के पक्ष में प्रस्तुत वसीयत में कथित वसीयतकर्ता स्वामी विष्णुदेवानन्द के हस्ताक्षर कूटरचित पाये गए तो इसे धोखाधड़ी और चार सौ बीसी का प्रकरण मानकर अपराधिक प्रकरण दर्ज करने के आदेश क्यों नहीं दिये गए?

क्या है और कहां है, शंकराचार्य की गद्दी ?

बार-बार यह बात कही जाती है कि फलां व्यक्ति शंकराचार्य की गद्दी पर विराजमान था, या कि गद्दीनशीन था। लेकिन यह बात हस्यास्पद है। क्योंकि ऐसा कोई भौतिक आसन नहीं है, जिसे शंकराचार्य की गद्दी कहा जाता हो। यह कोई सामान्य महन्ती या मठाधीशी नहीं है। शंकराचार्य की पीठ 'गद्दी' नहीं 'आचार्य पीठ' है। और गद्दीनशीन होने का अर्थ है मठाम्नाय महानुशासनम् में निर्दिष्ट योग्यताओं और लक्षणों से युक्त सन्यासी का अभिषेक शांकर पीठ पर होना। इस पीठ पर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सन्यासी का ही अभिषेक होना चाहिए।

स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी प्रसंग

कहा गया है कि गुरु-शिष्य परम्परा के आधार पर स्वामी कृष्णबोधाश्रम ज्योतिष्पीठ के शंकराचार्य नहीं हो सकते थे, क्योंकि वे स्वामी ब्रह्मानन्द के शिष्य नहीं थे। यह तर्क मिथ्या और भ्रामक है क्योंकि ज्योतिष्पीठ पर मनीषियों द्वारा स्वामी कृष्णबोधाश्रम का चयन और अभिषेक स्वामी शान्तानन्द का निग्रह कर दिये जाने के पश्चात् वैसे ही किया गया था, जैसे स्वामी ब्रह्मानन्द जी का किया गया था। इसी तरह स्वामी स्वरूपानन्द जी का अभिषेक भी इसी प्रक्रिया से किया गया था। फिर राजा सुधन्वा के ताम्रपत्र के अनुरूप शांकर पीठों के मामले में अन्तिम निर्णायक द्वारका के शंकराचार्य द्वारा स्वामी कृष्णबोधाश्रम को ज्योतिष्पीठ का शंकराचार्य घोषित किये जाने को मान्यता क्यों नहीं दी गई ?

ज्योतिष्पीठ का विच्छिन्न होना

विभिन्न कारणोंवश ज्योतिष्पीठ में शंकराचार्य परम्परा 165 वर्षों तक विच्छिन्न रही आई। इससे सनातन धर्म का बहुत अहित हुआ। अब अगर ज्योतिष्पीठाधीश्वर के रूप में 43 वर्षों तक दक्षतापूर्वक और अधिकारपूर्वक दायित्व निर्वहन के बाद स्वामी स्वरूपानन्द जी को वंचित कर ज्योतिष्पीठ को रिक्त रखा जाता है तो यह परम्परा एक बार फिर विच्छिन्न हो जाएगी और सनातन धर्मावलम्बियों को इससे कब तक और कितना आघात पहुंचेगा, इसकी कल्पना ही विचलित कर देती है।

अजित वर्मा



पत्रकारिता के 50 वर्ष

लेखक परिचय

जन्म : 10 अक्टूबर 1948

शिक्षा : डिप्लोमा इले.इंजी, एम.ए. (राजनीतिशास्त्र) एल.एल.बी., स्त्रोतकत्तोर, साहित्य रत्न, कोविद (संस्कृत), पत्रकारिता पत्रोपाधि।

पत्रकारिता प्रारंभ : छात्र जीवन में सन् 1964 से दैनिक युगधर्म से प्रारम्भ, नईदुनिया (फिर नवीन दुनिया 1967 से 1992), दैनिक नवभास्कर : स्थानीय सम्पादक (1992), दैनिक जयलोक : प्रधान सम्पादक (1993 से अब तक)

इस अवधि में कुछ समय तक म.प्र. उच्च न्यायालय में वकालत और शासन के रिवीजन ऑफ गजेटियर्स में राजपत्रित अधिकारी के रूप में कार्य।

प्रकाशित पुस्तकें : जीवन दर्शन, लोकतंत्र सूली पर (बांग्ला देश मुक्ति संग्राम 1971), आहुति (जबलपुर में स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास 1976), अनहर्ड क्राइज (जबलपुर भूकम्प : 1997), दिग्विजय लोकनीति (एक दशक 92-02 की घटनाओं का दस्तावेज) तहलका हंगामा और हम (तहलका प्रकरण : 2003), राजनैतिक, तकनीकि, विकास और लोकोपयोगी विषयों पर अनेकों लेख मालाएं

सांस्कृतिक संस्था मित्र संघ : संस्थापक 1967

जबलपुर पत्रकार संघ : सन् 1979 से 83 तक महामंत्री : सन् 1989 से अब तक अध्यक्ष

53 वर्षों से पूरी प्रतिबद्धता और निष्ठा के साथ पत्रकारिता के श्रेष्ठतम मूल्यों और आदर्शों के अनुरूप मिशन-भावना से पत्रकारिता को समर्पित । मुद्दों की पत्रकारिता को बढ़ावा देने वाले पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठित।

संपर्क : 9425324769, 9827245048, 9300076111